ISSN : 2321-3922
अक्टूबर – 2021
RNI-BIHHIN05394
वर्ष – 7 अंक–26

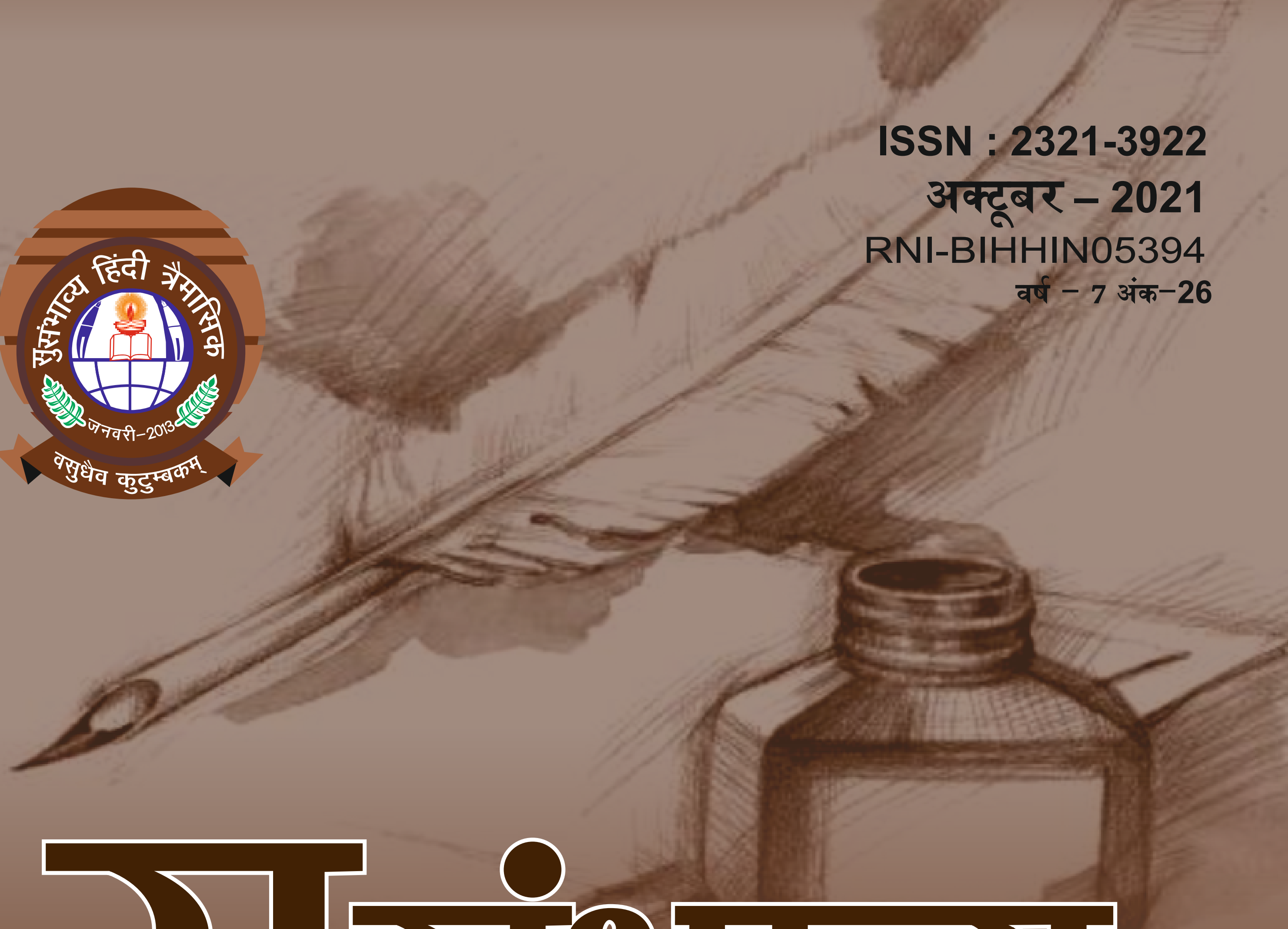

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जनवरी–मार्च - 2021

प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
वर्ष–7, अंक–26

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्रीमती अनिता जायसवाल

सम्पादक मंडल
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
अश्विनी प्रजावंशी

संस्थापक सदस्य
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जुलाई 2022 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
समीक्षा	बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास...	ए. के सिन्हा	06
समीक्षा	दृश्य से अदृश्य का सफर	पंकज कुमार सुबीर	08
कविताएँ	सबके कुछ अरमान हैं, भगवान के पीछे	रमेश चन्द्र आचार्य, हीरा लाल अंजान	10
समीक्षा	केदारनाथ सिंह और उनकी काव्य कृति ''अभी बिल्कुल अभी''	जितेन्द्र निर्मोही	11
समीक्षा	आदर्श और व्यवहारिक जीवन के बीच प्रेम की पड़ताल	अमरेन्द्र सुमन	14
समीक्षा	काव्य सृजन तथा सार्थकता प्रदान करता ''कविता का जनपक्ष''	डॉ. शीतलचन्द पालीवाल	17
समीक्षा	आज के टुटते आदमी की आवाज : प्रो. प्रभुनारायण श्रीवास्तव	अरविन्द असस्थी	18
समीक्षा	वर्त्तमान दशक में युवा पीढ़ी का कथा संसार	रमेश शर्मा	19
आलेख	नारी की महिमा और वेदों में नारी की स्थान	डॉ. विदुषी शर्मा	23
लघुकथा	ऐतराज	महिमा श्री	25
आलेख	गीतों का राजकुमार : गोपाल सिंह नेपाली	मधुकर वनमाली	26
आलेख	ये खेत मातृभूमि का नाम	भगवती प्रसाद द्विवेदी	27
आलेख	लोकगीतों में बिरहा विधा को दिलाई पहचान : कृष्ण कुमार यादव	डॉ. जयशंकर जय	28
आलेख	इतिहास–दृष्टि और साहित्य	डॉ. अमर सिंह	29
आलेख	अगस्त क्रांति एवं दामोदर प्रसाद सिंह : एक आकलन	आलोक भारती	31
कहानी	वसीयत	मदन गुप्ता सपाटू	34
लघुकथा	त्याग	डॉ. जय सिंह अलवरी	35
कहानी	''कोरोना.....कोरोना....लॉकडाउन''	नीरजा हेमेन्द्र	36
कहानी	द मेकिंग ऑफ द नेताइन	डॉ. पूरन सिंह	41
विमर्स	'कब्र से उठती इन्सानी रूहों की आवाज'	दिनेश कुमार पाल	47
कविताएँ	घिस रहा है धान का कटोरा	लक्ष्मीकान्द मुकूल	48
दोहा	डॉलफिन गंगा–प्राण	डॉ. इन्दुभूषण मिश्र 'देवेन्दु'	49
गज़लें	गज़लें	धमेन्द्र गुप्त	50
कविता	हिम्मत न हार	गीता गुप्ता मन	51
कविता	परम्परा के बोझ तले	चन्द्रकान्त राय	51
कविता	शब्द	भारत यायावर	52

उड़ाने

कवि मरते हैं
जैसे पक्षी मरते हैं
गोधोली में ओझल होते हुए

सिर्फ उड़ाने बची
रह जाती हैं

दुनिया में आते ही
क्यों हैं
जहाँ इन्तजार बहुत
और साथ कम

स्त्रियाँ जब पुकारती हैं
अपने बच्चों को
उनकी याद आती है

क्या एक ऐसी
दुनिया आ रही है
जहाँ कवि और पक्षी
फिर आएँगे ही नहीं।

– आलोक धन्वा

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

साहित्य जीवन की नींव है। यह हर तरह के क्षेत्र से जुड़े हुए ज्ञान को एक जगह पर शब्दों में समेट देता है और यही शब्द हमेशा–हमेशा के लिए साहित्य के रूप में जीवित रहते हैं। साहित्य एक ऐसी सामग्री है जो पाठक के लिए भरोसेमंद है, उन्हें नैतिकता सिखाती है और उन्हें अच्छे निर्णय लेने का अभ्यास करने के लिए प्रोत्साहित करती है, समाज में साहित्य का अध्ययन होना जरूरी है क्योंकि यह मानवीय रिश्तों को जोड़ने की क्षमता प्रदान करता है, और हमें बताता है कि क्या सही है और क्या गलत है। साहित्य वही है जिसमें उच्च चिंतन हो, सौंदर्य का सार हो, स्वाधीनता का भाव हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाई हो, हर एक क्षेत्र साहित्य के बिना अधूरा है। वह कोई भी घटना हो सकती है जो लेखनी के माध्यम से साहित्य की किसी न किसी शैली में समाहित है।

हमारे धर्मों, ऐतिहासिक कहानियों, तकनीकियों और विज्ञान सभी को साहित्य में संकलित करके जीवित रखा गया है। साहित्येतिहास की ओर देखें, तो भारत का संस्कृत साहित्य ऋग्वेद से आरम्भ होता है। व्यास, वाल्मीकि जैसे–पौराणिक ऋषियों ने महाभारत एवं रामायण जैसे महाकाव्यों की रचना की। भास, कालिदास एवं अन्य कवियों ने संस्कृत में नाटक लिखे। भक्ति साहित्य में अवधी में गोस्वामी तुलसीदास, ब्रज भाषा में सूरदास तथा रैदास, मारवाड़ी में मीराबाई, खड़ीबोली में कबीर, रसखान, आंगी के सरहपा, मैथिली में विद्यापति आदि प्रमुख हैं। अवधी के प्रमुख कवियों में रमई काका सुप्रसिद्ध कवि हैं। हिन्दी साहित्य में कथा, कहानी और उपन्यास के लेखन में प्रेमचन्द का महान योगदान है। ग्रीक साहित्य में होमर के इलियड और ऑडसी विश्वप्रसिद्ध हैं। अंग्रेजी साहित्य में शेक्सपियर का नाम कौन नहीं जानता।

भारत की भाषाओं का परिवार छोटा नहीं है, बहुत बड़ा है फिर भी उनका साहित्यिक आधारभूमि एक ही है। रामायण, महाभारत, पुराण, भागवत, संस्कृत का अभिजात्य साहित्य अर्थात् कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट, श्रीहर्ष, अमरूक और जयदेव आदि की अमर कृतियाँ, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश में लिखित बौद्ध, जैन तथा अन्य धर्मों एवं विभिन्न भाषाओं का साहित्य भारत को समृद्ध किया है। और आज भी हमारा साहित्य भाषाशास्त्र के अन्तर्गत उपनिषद्, षड्दर्शन, स्मृतियाँ आदि और काव्यशास्त्र के अनेक अमर ग्रंथ–नाट्यशास्त्र, ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, रसगंगाधर आदि की विचार–विभूति का उपयोग निरन्तर कर रहा है। वास्तव में आधुनिक भारतीय भाषाओं के ये अक्षय प्रेरणा–स्त्रोत हैं जो प्रायः सभी को समान रूप से प्रभावित करते रहे हैं। इनका प्रभाव निश्चित ही अत्यन्त समन्वयकारी है और इनसे प्रेरित साहित्य में एक प्रकार की मूलभूत समानता आ गई है। जिस प्रकार अनेक धर्मों, विचार–धाराओं और जीवन प्रणालियों के रहते हुए भी भारतीय संस्कृति की एकता असंदिग्ध है, उसी प्रकार अनेक भाषाओं और अभिव्यंजना–पद्धतियों के रहते हुए भी भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता का अनुसंधान भी सहज–संभव है। भारत की प्रत्येक भाषा के साहित्य का अपना स्वतंत्र और प्रखर वैशिष्ठ्य है जो अपने प्रदेश के व्यक्तित्व से मुद्रांकित है।

आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के लिए आचार्य शुक्ल ने इतिहास के माध्यम से तथ्याश्रित उपपत्ति में बताया है कि साहित्य जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है। इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य–परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाने में आलोचना–कर्म निहित है। यह समन्वय–भावना केवल साहित्यिक क्षेत्रों में ही नहीं अपितु धार्मिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक आदि सभी क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होती है। जिस प्रकार नदियाँ अपना पृथक उद्‌गम, पृथक अस्तित्व, पृथक वैशिष्ट्य रखते हुए अन्ततः समुद्र में ही विलीन होती हैं, वैसे ही भारत में विद्यमान समस्त पार्थक्य अन्ततः भारतीयता में ही विलीन हो जाते हैं, जो समन्वयवादी प्रवृत्ति के कारण ही संभव है। आनन्द में विलीन हो जाना ही मानव–जीवन का परम उद्देश्य है। साहित्य हमें आनन्द के धरातल पर खड़ा कर समरसता का अनुभव एवं अखंड विराटत्व से हमारा परिचय कराता है।

साहित्य के निष्कर्ष युगानुरूप और व्याख्यानुसार परिवर्तित होते रहते हैं। ज्ञान नव–नव अनुभवों के कारण विस्तृत या व्याख्यायित होता रहता है। हम दृष्टि पथ में आनेवाली प्रत्येक वस्तु को सहज भाव से देखते हैं, पर जब किसी वस्तु के विशेष को सहज भाव से देखते हैं तब वह देखना वैज्ञानिक निरीक्षण कहलाता है। किसी भी तथ्यों का सतर्कता पूर्वक सम्यक् अध्ययन से ही उसमें निहित सौन्दर्य के विश्लेषण की ओर हम जा पाएँगे और तब हमें प्रतीत होगा उसके भाव पक्ष, कला पक्ष, भाषा, छंद, अलंकार, एवं उसका उद्देश्य। आधुनिक युग के वैज्ञानिक बोध ने विश्व मानवता को जो सबसे बड़ा वरदान दिया है, वह है सत्यानुसंधानात्मक दृष्टिकोण और उसके प्रति अदम्य अनुराग। इस नवीन दृष्टिबोध ने दर्शन और चिंतन के क्षेत्रों के साथ–साथ कला और साहित्य के विविध आयामों को भी पूरी तरह प्रभावित किया है। इसलिए हमारा निष्कर्ष पाठकों के समक्ष परिष्कृत रूप में आये, क्योंकि साहित्य की रचना उत्कृष्टता की वर्त्तमान कसौटी अनुभूति की वह तीव्रता है, जिससे वह हमारे भावों और विचारों में गति पैदा करता है। और उससे ही हममें सुरुचि जगती है, मानसिक तृप्ति मिलती है, हममें शक्ति और गति पैदा होती है, सौन्दर्य–प्रेम जागृत होता है, इसमें सच्चा संकल्प और सच्ची दृढ़ता आती है। कलाकार अपनी कला से सौन्दर्य की सृष्टि करके परिस्थिति को विकास के लिए उपयोगी बनाता है।

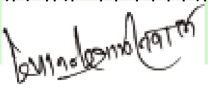

समीक्षा

'बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास'

''एक ऐतिहासिक साहित्यिक यात्रा''

ए.के. सिन्हा
विशाखापटनम
मो.–06302198456

कुछ किताबें ऐसी होती हैं जो पीढ़ी दर–पीढ़ी धरोहर के रूप में घरों में पाई जाती है। सन् 1960 ई. तब दस वर्ष की उम्र में मैंने राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त की किताब भारत–भारती पढ़ी थी। वह किताब मुझे अपने नानाजी श्री गोपाल लाल (जो उस समय आरा टाउन स्कूल के प्रिंसिपल थे) की आलमारी में मिली थी। उसकी प्रारंभिक पंक्यिाँ (मंगलाचरण) मुझे अभी तक याद है–

''मानस भवन में आर्यजन,
जिसकी उतारें आरती
भगवान भारत वर्ष में
गूँजे हमारी भारती।''

यह पंक्तियाँ मैं पुरी श्रद्धा और विश्वास से अनुपम साहित्य उपासक एवं सेवी 'सुसंभाव्य' के संस्थापक सह संपादक श्री दयानन्द जायसवाल जी की पुस्तक या ग्रंथ ''बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास'' के बारे में दोहराता हूँ। 'अनुपम' शब्द इसलिए कि इसतरह की किताब जो एक क्षेत्र या राज्य विशेष को लेकर हिन्दी में पहली बार लिखी गई है, जिससे हिन्दी के अन्य क्षेत्र या राज्य वालों को ऐसी जानकारी एवं विवेचना पूर्ण ग्रंथ लिखने की प्रेरणा मिलेगी और ऐसे लेखक, कवि प्रकाश में आएंगे जिनके बारे में राष्ट्रकवि दिनकर ने लिखा है –

''जो अगणित लघु दीप हमारे
तूफानों में एक किनारे
जल–जलकर बुझ गए, किसी दिन
मांगा नहीं स्नेह मुँह खोल,
कलम आज उनकी जय बोला......
अंधा चकाचोंध का मारा
क्या जाने इतिहास बेचारा,
साक्षी हैं उनकी महिमा के
सूर्य, चंद्र, भूगोल, खगोल
कलम, आज उनकी जय बोल।''

'विश्व भर में गुंजे.'....इसलिए कह रहा हूँ कि अब हिन्दी वैश्विक भाषा है। और अगर केवल 'बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास' की ही बात करें तो यह कम से कम चालीस करोड़ (वर्तमान में) हिन्दी भाषा भाषियों के पूर्वजों का इतिहास है। जो मॉरिशस, सूरिनामा, फिजी, गुयाना, दक्षिण अफ्रीका, अमेरिका, यूरोप, आस्ट्रेलिया आदि के देशों में फैले हुए हैं। कश्मीर से कन्याकुमारी तक हिंदी का विस्तार है।

मानव चेतना के विकास को संजोए इतिहास, विचारों और आस्थाओं को एक पीढ़ी से दूसरी को सोंपने का एक सरल मार्ग है। स्मृति के संरक्षण के असाधारण कार्य के रूप में स्मृति और श्रुति की परंपरा के माध्यम से विभिन्न कृतियों को वर्त्तमान समय तक पहुँचा पाए हैं। यहाँ जो बात इतिहास पर लागू होती है वही साहित्य के विकास के संबंध में देखी जाती है। सामाजिक जीवन के विकास के अखंड सातत्य में रचित साहित्यिक कृतियाँ ही साहित्येतिहास के तथ्य हैं, जिनमें निहित प्रवृत्तियों, प्रेरणाओं आदि की मीमांसा करते हुए उनकी ऐतिहासिक प्रासंगिकता और मूल्यांवत्ता की खोज करना लेखक की अभिव्यंजना है। सामान्यतः इस साहित्यिक इतिहास में आलोचनात्मक दृष्टिकोण का उपयोग किया गया है। अतीत की पृष्ठभूमि में, वर्त्तमान के परिप्रेक्ष्य में भविष्य की संभावना की खोज है। आज आवश्यक है कि युग चेतना और साहित्य चेतना के समन्वय पर आधृत साहित्यिक इतिहास के संश्लिष्ट स्वरूप को हम स्वीकार करें और इसी आधार पर एक सामंजस्य रूप–रेखा का निर्माण किया गया है तथा प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रभाव में विकसित हिंदी के विविध रूपों की अभिव्यक्ति तथा साहित्यिक–चेतना के विकासक्रम का साहित्यिक प्रतिमानों के आधार पर ऐतिहासिक आकलन किया गया है।

इन परिस्थितियों में श्री दयानन्द जायसवाल जी प्रधान संपादक 'सुसंभाव्य' का 'बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास' ग्रंथ लिखने के कार्य से विशेष प्रशंसनीय, स्तुत्य और साधुवाद के पात्र हैं। अब इसके आगे हम हिंदी भाषायी, हिंदी प्रेमी, हिंदी पाठकों का कार्य, कर्त्तव्य, और कर्ज है कि हम इसकी एक प्रति अपने घरों में रखें ताकि हमारे आगे आनेवाली पीढ़ियों को साहित्यिक धरोहर के रूप में दे सकें। और उन्हें यह याद रहे कि वे जिस हिंदी के जगमगाते महल में रह रहे हैं उसके बनाने वालों ने कितना श्रम किया है। और कितने कहर सहे हैं। नहीं तो–

पुल बनता है,
सेनाएँ पुल पार करती हैं।
प्रभु श्री राम की विजय
और जय–जय कार होती है
रावण की अमरता की कहानी
इतिहास में लिखी जाती हैं
लेकिन पुल बनाने वाले कहाँ जाते हैं
और इतिहास में वे क्या कहलाते हैं?

श्री जायसवाल जी ने कितने श्रम साध्य (आर्थिक भी) प्रयत्नों से यह किताब लिखी है यह बात प्रथम दृष्टिया ही सामने आती है इतने लोगों के बारे में, उनकी अनगिनत रचनाओं के बारे में पता लगाना और उसकी विवेचना करना कितने परिश्रम का कार्य है। यह पुस्तक के आकार–प्रकार से ही समझ में आ जाता है।

यह ग्रंथ नौ (Nine) अध्यायों में विभाजित है। पहले अध्याय में 'बिहार के हिंदी साहित्य की यथार्थ चेतना और भाषिक कला' पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे अध्याय में बिहार के हिंदी साहित्य के प्राचीन काल (600 ई.–1375 अर्थात् सातवीं से चौदहवीं सदी) का

वर्णन है। इस काल को भाषा का आदिकाल कहा जाता है। तब यह जानना असंगत न होगा कि हिंदी का उद्‌गम स्थल बिहार ही है। अनेक विद्वानों के शोधों से अपभ्रंश भाषा के आदि कवि 'सरहपा' या राहुल भद्र (प्रथम सिद्ध) के जीवन और उनके रचित ग्रंथ प्राप्त हुए हैं। इसका श्रेय बिहार के अंग प्रदेश को जाता है। कवि का जन्म सबौर (भागलपुर) में हुआ था। ये सबसे प्राचीन एवं प्रथम सिद्ध या सिद्धाचार्य थे जो अंगिका और हिंदी के आदि कवि हैं।

तीसरा अध्याय बिहार के हिंदी साहित्य का पूर्व मध्यकाल (1376 ई. से 1750 ई.) तक का है। इस समय प्रारंभिक काल के बाद हिंदी भाषा का महत्त्व बढ़ने लगा और वह लोक चेतना में परिलक्षित होने लगी। इसके बाद का अध्याय हिंदी साहित्य का उत्तर या परवर्ती मध्यकाल (1751–1900 ई.) है, अब हिंदी का स्वरूप वर्त्तमान रूप के नजदीक आने लगा। अब यह सहज ही उच्च शिखर की ओर बढ़ रही थी। इस युग ने श्रेष्ठता के कीर्तिमान स्थापित किया और श्रोताओं और पाठकों का वर्ग भी।

किसी भी भाषा के इतिहास में इतनी अल्प अवधि में होने वाले यह प्रगति गर्व की बात मानी जायेगी। इसके उत्थान में सबसे मूल तत्त्व है साहित्यकारों का अदम्य साहस और उत्साह।

इसके बाद का अध्याय बिहार के हिंदी साहित्य का आधुनिक काल (1901 ई.– 1960 ई.) का इतिहास है। इस काल की सबसे महत्त्वपूर्ण देन है। खड़ी बोली का साहित्य के गद्य और पद्य दानों क्षेत्रों में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम पूर्ण रूप से स्वीकृत होना। यहाँ पर जायसवाल जी ने बताया है कि अब 'खड़ी बोली' के बदले हिंदी भाषा' शब्द का प्रयोग किया है। वस्तुतः यह विडंबना ही है कि हम 'ब्रज' बोली को ब्रज भाषा कहते हैं और हिंदी भाषा को 'खड़ी भाषा' के बदले खड़ी बोली। अंतिम यानी नौवां (9th) अध्याय बिहार के हिंदी साहित्य का वैविध्य काल (1961 से आजतक 20 वीं सदी से 21 वीं सदी) तक का है। इस काल में नई कविता, नई कहानी नये उपन्यास आदि नये विचारों के साथ यथार्थवादी जीवन की प्रखरता का सूचक है। इसमें नवीन विधाओं का तेजी से विकास हो रहा है। प्रयोगवाद के पश्चात् हिंदी साहित्य में एक अभिनव लेखन की प्रक्रिया दिखाई पड़ती है। इस आधुनिक साहित्य में आधुनिक जीवन बोध, वर्त्तमान जीवन की विसंगतियाँ, जीवन का अजनवीपन आदि की प्रक्रिया तेज गति से उभरने लगी हैं। आज के नये साहित्य में वह सब कुछ है जो जीवन जीने के लिए अपेक्षित है।

इस प्रकार एक भगीरथ के प्रयास से निकली बिहार के हिंदी साहित्य की यह ऐतिहासिक धारा न केवल हिंदी भाषा के उद्‌गम स्थान एवं स्रोत का पता देती है अपितु यह आनेवाले समय की साहित्यक प्रवृतियों का संकेत भी देती है। आज समाज पर संकट के बादल छाते जा रहे है। बाकी सब चीजों के अलावा 'कोरोना' महामारी का अभूतपूर्व वैश्विक संकट समाने खड़ा है। इन परिस्थितियों में साहित्य और साहित्यकार का दायित्व और भी बड़ा हो जाता है। संवेदना की संस्कृति के बदले अर्थ की संस्कृति घनीभूत होती जा रही है। इसके प्रतिकार के लिए साहित्य और साहित्यकार को मार्ग और दिशा निर्देशन के लिये आगे आना पड़ेगा जैसा कि डॉ. जगदीश चंद्र माथुर के एकांकी नाटक 'भोर का तारा' में दर्शाया गया है कि ऐसे संकट काल में महाकवि कालिदास (मूलतः बिहार निवासी) श्रृंगार रस की धारा से निकलकर सामाजिक कल्याण की धारा प्रवाहित करते है। क्योंकि साहित्य ही वह साधन है जिसके द्वारा संस्कृति और सभ्यता को पीढ़ी–दर–पीढ़ी निरंतर प्रवाहमान किया जा सकता है। जीवन की समस्याओं और समाधान को बताने का काम साहित्य और साहित्यकार को करना ही होगा। क्योंकि उसने कलम उठायी है। इस संदेश के साथ ही आठ सौ चौबीस पन्नों की इस यात्रा में इन्होंने समस्त वादों का विश्लेषण करते हुए एक नया समन्वयवाद का निर्धारण किया है। हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि का उल्लेख करते हुए कहा है कि 'हिंदी साहित्य की धारा निरंतर गतिशील होती रही है। यह अपनी विविधता और नवीनता के कारण अपनी विकासयात्रा में विभिन्न पड़ावों से होकर गुजरी है। जिसमें कुछ महत्त्वपूर्ण पड़ावों का सामान्य परिचय कई वर्गों में विभाजित किया गया है। प्राचीन खड़ी बोली, नवीन खड़ी बोली, भारतेन्दुयुग (जागरण काल), द्विवेदीयुग (सुधारवाद, आदर्शवाद, राष्ट्रवाद), प्रसादयुग (छायावाद) और इसके बाद प्रगतिवाद और प्रयोगवाद आया। परन्तु आज का नवलेखनयुग अर्थात् वैविध्यकाल को हम समन्वयवाद काल कह सकते हैं। .....साहित्य के विकास रहस्य अब सामंजस्य साधना 'समन्वयवाद' में निहित है। प्रवृत्ति के आधारभूत वृत्तियों का समन्वय साहित्य सौन्दर्य का आकांक्षी है। आज लेखकों कवियों के वारे में साहित्यिक प्रवृत्तियों एवं शिल्पों को एक जगह इकट्ठा पा लेते हैं। इसमें रचना विधियों का नव्य प्रयोग भी देखने को मिलता है। ....साहित्य में विभिन्न प्रकार के वाद एक तरह से साँचा है और जब यह साँचा बन जाता है तो वह अपने आप काल वाह्य हो जाता है। इसलिए आज का यह वैविध्यकाल 'समन्वयवाद' को जन्म दिया है।''

अब हिंदी केवल वैश्विक संवाद की ही नहीं वैश्विक व्यापार की भी भाषा बनती जा रही है। इसमें लेखक, संपादक और प्रकाशक अपनी जलती हथेलियों की परवाह न कर हिंदी भाषा और साहित्य के दीप को प्रज्वलित किये रखते हैं। इस ग्रंथ के प्रकाशक 'लकी इंटरनेशल, संगम बिहार, नई दिल्ली की भी प्रसंशा करना आवश्यक है जिन्होंने किताब को इतने आकर्षक और सुरुचिपूर्ण रूप से प्रकाशित किया है। बर्त्तनी त्रुटी (Spelling Mistake) न के बराबर है। पुस्तक की छपाई (Printing) और कलेवर उत्तम है।'

स्वाभाविक रूप से कुछ नाम छूट गये है। जिनको अगले संस्करणों में स्थान मिलेगा।

अंत में इतना ही लिखना चाहूँगा कि इस ग्रंथ के द्वारा 'सुसंभाव्य' संपादक श्री दयानन्द जायसवाल जी ने हिंदी साहित्य में स्वर्णाक्षरों में अपनी उपस्थिति दर्ज की है और एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। पुस्तक के बारे में फिर से राष्ट्रकवि श्री मैथलीशरण गुप्त की वही 'भारत–भारती' की पंक्तियाँ दोहराना चाहूँगा–

''मानस–भवन में आर्यजन
जिसकी उतारे आरती
भगवान भारतवर्ष में
गूंजे हमारी भारती।''

l eh{kk

दृश्य से अदृश्य का सफर

पंकज सुबीर
सीहोर, म. प्रदेश.
मो.– 9977855399

हिन्दी कथा संसार का दायरा वैसे तो दिनों–दिन विस्तृत होता जा रहा है, फिर भी अभी कई विषय ऐसे हैं, जिन पर बहुत ज्यादा काम अभी तक सामने नहीं आया है। जबकि इन्हीं विषयों पर विदेशों में बहुत काम हुआ है और अभी भी हो रहा है। नई सदी में हिन्दी कथा साहित्य ने कई नए विषयों की जमीनें तोड़ कर वहाँ कहानियों और उपन्यासों की फसल उगाई है। कई ऐसे विषय जिन पर पहले बहुत कम बात की जाती थीं, गिने–चुने उदाहरण जिनके मिलते थे, अब उन विषयों पर बहुत काम हो रहा है और लगभग अछूत समझे जाने वाले उन विषयों को नई सदी में सामने आए लेखक खूब उठा रहे हैं। नई सदी का साहित्य एकदम नए नजरिये का साहित्य है, जिसमें कहीं किसी भी विषय से परहेज करने वाली बात दिखाई नहीं देती है। शोध करके लिखने की प्रवृत्ति भी इधर काफी दिखाई देती है। क्योंकि इंटरनेट के कारण शोध कार्य में कुछ आसानी हो गई है। इन दिनों जो उपन्यास सामने आ रहे हैं, वह बहुत अध्ययन और शोध से उपजे हुए होते हैं, उनके पीछे किया गया परिश्रम साफ दिखाई देता है।

सुधा ओम ढींगरा का अधिकांश महत्त्वपूर्ण लेखन नई सदी में ही सामने आया है तथा उनकी महत्त्वपूर्ण और चर्चित किताबें भी नई सदी में ही सामने आई हैं। इसीलिए उनको नई सदी में सामने आई कथा–पीढ़ी के साथ ही रेखांकित करना होगा। हिन्दी में कथा–समय से ज्यादा वरिष्ठ कनिष्ठ के दायरों में काम होता है, जो ठीक नहीं है। असल में एक कथा–समय को ही रेखांकित किया जाना चाहिए। उस कथा–समय में सक्रिय कौन था, कौन अपने समय के परिवर्तनों पर नजर रखे हुए था, तथा उसकी रचनाओं में उस परिवर्तन की आहट महसूस हो रही थी या नहीं यह सब देखा जाना बहुत जरूरी हैं। कई सारे वरिष्ठ लेखक ऐसे हैं, जिनकी शैली, शिल्प तथा विषयों में नवीनता दिखाई दे रही है, जबकि कई युवा लेखक ऐसे हैं, जो पारंपरिक ढर्रे पर ही चल रहे हैं, ऐसे में आप नए कथा–समय की बात करते समय किसको उसमें शामिल करेंगे। उस लेखक को जो नया है या उस लेखक को जिसका लेखन नया है?

सुधा ओम ढींगरा का यह दूसरा उपन्यास है जो सामने आया है। इससे पहले उनका उपन्यास 'नक्काशीदार केबिनेट' लगभग पाँच साल पहले आया था, और पाठकों तथा आलोचकों दोनों ने इसे खूब सराहा था। उस उपन्यास की कहानी भारत और अमेरिका के बीच आवाजाही करती रहती थी। एक तूफान को प्रतीक बना कर सुधा ओम ढींगरा ने कई सारे तूफानों की चर्चा उस उपन्यास में की थी। 'दृश्य से अदृश्य का सफर' सुधा ओम ढींगरा का नया उपन्यास है, जो भारत में कोरोना की दूसरी लहर की भयावहता के दौरान सामने आया है। यह उपन्यास एक ऐसे विषय पर आधारित है, जिस पर हिन्दी में बहुत कम काम हुआ है। कुछेक उपन्यास ही इस विषय पर दिखाई देते हैं। मनोविज्ञान पर तो बहुत काम दिखाई देता है, लेकिन मनोवैज्ञानिक समास्याओं पर बहुत कम ही काम इधर दिखता है। यदि दिखता भी है तो वह इतना कठिन और जटिल है कि हिन्दी के पाठक के लिए उसे समझना भी एक समस्या हो जाती है। यह विषय इतना जटिल है कि इस पर लिखते समय कठिन हो जाने की समस्या से पार पाना मुश्किल हो जाता है। लेकिन 'दृश्य से अदृश्य का सफर' एक जटिल विषय पर सरलता से लिखा गया उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक ने मनोवैज्ञानिक समस्या को विषय बनाया है और इस कठिन विषय को बहुत सहजता के साथ पाठक के सामने रख दिया है। पाठक इस उपन्यास को पढ़ते हुए जटिलता के चक्रव्यूह में नहीं उलझता है तथा किसी प्रवाहमय धारा के साथ बहता हुआ चला जाता है। कठिन विषय पर सरल उपन्यास लिख देना लेखक की पहली सफलता है।

'दृश्य से अदृश्य का सफर' की कहानी प्रारंभ तो होती है कोरोना की उस पहली लहर के साथ, जो 2020 में पूरे विश्व में एक साथ आई थी, लेकिन कहानी चूँकि कोरोना की नहीं है कुछ और है, इसलिए बहुत जल्द कहानी कोरोना को छोड़कर अपने मूल विषय पर आ जाती है। सुधा ओम ढींगरा ने अपने पिछले उपन्यास की तरह इसमें भी प्रतीक के रूप में कोरोना का उपयोग किया है, किन्तु उस प्रतीक के माध्यम से बिल्कुल अगल कहानी कही है। पिछले उपन्यास में तूफान था इसमें कोरोना है। वह उपन्यास तूफान की कहानी में नहीं था, यह भी कोरोना की कहानी नहीं है। लेखक ने केवल टेकऑफ के लिए तूफान या कोरोना का केवल रनवे की तरह उपयोग किया है, एक बार जब कहानी रनवे को छोड़ देती है, तो फिर वह दूसरी दुनिया में पहुँच जाती है। फिर उस रनवे की कोई कहानी में नहीं, अब उस आसमान की कहानी है, जिसमें कहानी उड़ रही है। रनवे अंत में आता है जब कहानी वापस आकर लैंड करती है। यह बहुत ही दिलचस्प शैली है कहानी कहने की। किसी प्रतीक को इतनी खूबसूरती के साथ उपयोग करना कि कहानी के मूल विषय के साथ उसका तेल–पानी वाला रिश्ता बना रहे, साथ भी रहें और अलग भी रहें। कहानी असल में घटना नहीं होती है, कहानी का विषय जरूर घटना से आ सकता है। लेकिन, उस विषय का ट्रीटमेंट लेखक किस प्रकार कर रहा है, वह किसी प्रकार उस विषय का उपयोग कर रहा है कि पढ़ते समय पाठक को वही कहानी लगे, घटना नहीं लगे। यह उपन्यास इस शैली को समझने का एक अच्छा उदाहरण है कि किस प्रकार किसी घटना का उपयोग कहानी में किया जाता है। प्रवासी भारतीयों के लेखन ने हिन्दी में एक नई दुनिया के झरोखे खोलने का काम किया है। यह लेखन भारतीय की दृष्टि से उस देश को देखता है, इसीलिए यह लेखन भारतीय पाठकों के अंदर पैठने में सफल रहता है। 'दृश्य से अदृश्य का सफर' का सफर भी एक ऐसा ही उपन्यास है। यह उपन्यास कहानी तो अमेरिका की कहता है, किन्तु नजरिया भारत का ही रहता है। कहानी का मुख्य पात्र अमेरिका में बसा हुआ भारतीय है। उस पर विषय ऐसा है, जो दुनिया के हर हिस्से में एक सा ही है। मनोवैज्ञानिक समस्याएँ जिनको हम अज्ञानतावश बीमारी भी कहते हैं। यह उपन्यास उन लोगों को अवश्य पढ़ना चाहिए जो मनोवैज्ञानिक समस्याओं को बीमारी कहते हैं, समझते हैं। यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक समस्याओं को देखने के नजरिये में आमूलचूल परिवर्तन ला देता है। इस उपन्यास को पढ़ने के बाद किसी ऐसे व्यक्ति को देखने का पूरा दृष्टिकोण बदल जाता है। लेखक की एक और सफलता यह है कि यह उपन्यास बहुत अच्छे से समझाता है कि

मनोवैज्ञानिक समस्याएँ असल में जीवन में आ रही कुछ बड़ी मुश्किलों, असाधारण घटनाक्रमों तथा इन सबसे उपजे भय का ही परिणाम होती हैं। जब यह भय समाप्त हो जाता है तो समस्याएँ भी समाप्त हो जाती हैं। यह इस उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण तथा जरूरी बिन्दु हैं। लेखक ने मनोवैज्ञानिक समस्या से जूझ रहे व्यक्ति के अंदर बैठे भय को परत दर परत खोला है। और न केवल खोला है बल्कि समाधान प्रद तरीके से खोला है। साहित्य का कार्य भी तो यही होता है कि वह समस्या तक न रूके बल्कि आगे बढ़े वहाँ तक, जहाँ समस्या का समाधान है। कहानी भारतीय मूल की डॉ. लता भार्गव के अनुभवों का सहारा लेकर आगे बढ़ती है। डॉ. लता भार्गव जो एक साइकॉलॉजिस्ट हैं तथा फैमिली काउंसलिंग का काम करती हैं। उनके स्मृति कोष में कुछ ऐसे जटिल केस सुरक्षित हैं, जो सबसे चुनौतीपूर्ण केस थे उनके लिए। करोना के कारण चारों तरफ पसरे हुए लॉकडाउन से जो फुरसत का समय मिला है, उसमें डॉ. लता भार्गव उन केसिज की यादों के गलियारे में जाती हैं, और याद करती हैं उस समय को। कोरोना इस उपन्यास के लिए रनवे का काम करता है, जैसा कि मैंने पहले भी कहा। रनवे इस प्रकार कि कोरोना समय में ही एक पुराना केस फिर से खुलता है। ठीक हो चुके व्यक्ति के जीवन में कोरोना के दहशत भरे समय में समस्याएँ फिर से आ जाती हैं। वह एक बार फिर डॉ. तला भार्गव के संपर्क में आता है और उसके बहाने कहानी कोरोना के धरातल को छोड़कर मनोविज्ञान की दुनिया में पहुँच जाती है। जाहिर सी बात है कि यह जो प्रस्थान है, यह फ्लैशबैक के माध्यम से ही होता है, क्योंकि सारे पुराने केस कहीं यादों की डायरी में सुरक्षित हैं। डॉ. लता भार्गव उस डायरी के पन्ने पलटती जाती हैं और पाठक रू–ब–रू होता रहता है उन गहरी अँधेरी सुरंगों से, जिन्हें मनोवैज्ञानिक समस्याएँ कहा जाता है।

इस उपन्यास में डॉ. लता भार्गव के तीन पुराने केसिज की मदद से मनोविज्ञान की जटिल पहेली को बहुत सरल तरीके से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया गया है। पहला केस डॉली पार्टन है, दूसरा सायरा का है तथा तीसरा अनाम महिला का है। पहले दोनों नाम भी असल नाम नहीं है बल्कि डॉ. लता भार्गव द्वारा इन महिलाओं की विशेषताओं के आधार पर दिए गए नाम हैं। पहली का चेहरा–मोहरा मशहूर अमेरिकन गायिका डॉली पार्टन से मिलता है, इसलिए उसे वही नाम से बुलाती हैं डॉ. लता भार्गव और दूसरी भारतीय अभिनेत्री सायरा बानो से मिलती–जुलती शक्ल की है इसलिए उसे सायरा नाम मिला। तीनों कहानियों महिलाओं की ही हैं। असल में सभ्यता के विकास के क्रम में सबसे ज्यादा तनाव महिलाओं के ही हिस्से में आया है। जैसे–जैसे यह विकास का क्रम में सबसे ज्यादा तनाव में महिलाओं को ही अधिक करना पड़ता है। बल्कि यह कहा जाए तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि महिलाओं की समस्याओं के मूल में कहीं न कहीं पुरुष ही होता है। कम से कम इन तीन कहानियों से गूँथे हुए इस उपन्यास को पढ़ने के बाद तो यही कहा जा सकता है। पुरुष को यह समस्या कैसे हो सकती है, वह तो स्वयं ही समस्या है।

सुधा ओम ढींगरा ने उपन्यास में कोरोना समय में चल रही कथा के साथ इन तीन कहानियों को गूँथा है। जो कहानी कोरोना समय में चल रही है, वह एक डॉक्टर परिवार की कथा है। परिवार में सभी सदस्य डॉक्टर हैं और सब अपने–अपने स्तर पर कोरोना के वॉरियर्स का कार्य कर रहे हैं। ऐसे में जब कहानी फ्लैशबैक से वापस वर्त्तमान में आती है, तो बहुत सारी नई सूचनाएँ, जानकारियाँ पाठकों की मिलती हैं। ऐसी सूचनाएँ जो बिल्कुल नई हैं। लेकिन यह सूचनाएँ मुख्य कथा को बोझिल नहीं करती। कहीं ऐसा नहीं लगता है कि इनको कहानी में जबरन डाला गया है। यह सूचनाएँ बहुत सहजता से कहानी का हिस्सा बनते हुए आती रहती हैं। विदेश में बसे हुए चिकित्सकों के नजरिये से कोरोना समय को देखना इस उपन्यास का एक और रोचक पहलू है। भारतीय चिकित्सा तंत्र और विदेश के चिकित्सा तंत्र में क्या अंतर है, उस इस उपन्यास को पढ़कर समझा जा सकता है। बहुत सूक्ष्म दृष्टि से लेखक ने वहाँ के चिकित्सा तंत्र की पड़ताल की है। और वह सारी जानकारियाँ संवादों के माध्यम से पाठक तक पहुँचती हैं। किसी विषय पर शोध करना अच्छी बात है, लेकिन उसके बाद सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य होता है, उस शोध के परिणामों को कहानी में कैसे पिरोया जाए। कहानी को शोध–पत्र हो जाने से बचाने के लिए यह सलीका बहुत आवश्यक रूप से आना ही चाहिए लेखक को। इस उपन्यास में सुधा ओम ढींगरा ने बहुत सलीके से उन सूचनाओं को कहानी में पिरोया है, जो शोध से प्राप्त सूचनाएँ हैं।

उपन्यास की एक विशेषता यह है कि भले ही तीन कहानियों के माध्यम से मनोविज्ञान की दुनिया की बात कही गई है, लेकिन यह तीनों कहानियाँ बिल्कुल अलग–अलग कहानियाँ हैं। तीनों कहानियों में समस्या के मूल में अलग–अलग कारण हैं और इसी वजह से तीनों कहानियों में समस्या अलग–अलग रूप में सामने आती है। परिवार के ही सदस्यों द्वारा सामूहिक बलात्कार, एसिड अटैक तथा क्रूर एवं अत्याचारी पति ये तीन कारण तीन अलग–अलग कहानियों में हैं। तीनों का संत्रास इतना गहरा और भयावह है कि इसकी शिकार तीनों महिलाएँ मनोवैज्ञानिक समस्याओं से जूझने लगती हैं। और सामान्य स्तर पर नहीं बल्कि बहुत गंभीर स्तर पर। तीन अलग–अलग कहानियों में तीन बड़े कारणों को लेखक ने उठाया है। तीन कारण जो महिलाओं को पूरा जीवन किसी तूफान की तरह झकझोर कर रख देते हैं, और उसके बाद सामने आती हैं मनोवैज्ञानिक समस्याएँ। असल में यही यह बिन्दु है, जिस पर आकर कोरोना की कथा इन तीन महिलाओं की कहानी से एकाकार हो जाती है। जिस प्रकार इन महिलाओं के जीवन में झंझावत आता है, उसी प्रकार समूचे विश्व के जीवन में कोरोना नाम का झंझावत दस्तक देता है। और इसके बाद जिस प्रकार उन महिलाओं के जीवन में समस्याओं का प्रवेश होता है उसी प्रकार समेचे विश्व के लोगों के जीवन में समस्याओं का आगमन होता है। असल में लेखक ने बहुत गहरे उतर कर इस साम्य को स्थापित किया है। और कहीं न कहीं यह स्थापित करने की कोशिश की है कि कहीं भी, कुछ भी अकारण नहीं होता है, जो कुछ हो रहा है उसके पीछे कहीं न कहीं कुछ कारण अवश्य होता है।

इस उपन्यास को तीन कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत मनोविज्ञान की समस्याओं के लिए नहीं पढ़ना चाहिए, इसको पढ़ना चाहिए उन समाधानों के लिए, जो तीनों कहानियों में डॉ. लता भार्गव के प्रयासों से सामने आते हैं। कम से कम भारत के पाठकों को तो इन समाधानों के बारे में पढ़ना ही चाहिए, क्योंकि भारत में ही मनोवैज्ञानिक समस्याओं को लेकर सबसे ज्यादा भ्रांतियाँ हैं। भारत में ही इन समस्याओं के बारे में जाने क्या–क्या सोचा और कहा जाता है। डॉ.

लता भार्गव जिस प्रकार इन तीनों केसिज पर काम करती हैं, इन तीनों में परिणाम तक पहुँचती हैं, वह बहुत रोचक और दिलचस्प है। इस प्रकार के मामले किसी प्रकार हल किए जा सकते हैं, वह भी इस उपन्यास को पढ़ कर पता चलता है। वैसे तो तीनों ही प्रकरणों में समाधान वाला हिस्सा रोचक है, लेकिन तीसरा प्रकरण, जो अमेरिका में रह रही दक्षिण भारतीय महिला का प्रकरण है, उसमें डॉ. लता भार्गव द्वारा जिस प्रकार मामले को हल किया जाता है, वह बहुत दिलचस्प है। मनोवैज्ञानिक समस्या को कोई सायकॉलॉजिस्ट इस प्रकार भी हल करता है, यह उपन्यास को पढ़कर पाठक को ज्ञात होता है। असल में यह उपन्यास समाधान का उपन्यास है, समस्या का नहीं है, इसलिए इसे पढ़कर समाप्त कर लेने के बाद पाठक सकारात्मक रूप से बाहर आता है। सुप्रसिद्ध हिन्दी फिल्म 'खामोशी' में वहीदा रहमान एक नर्स के रूप में राजेश खन्ना की देखभाल करते हुए स्वयं समस्या से उलझ जाती है। इस उपन्यास को पढ़ते हुए डॉ. लता भार्गव में पाठक को इस फिल्म की नर्स राधा की कहानी दिखाई देने लगती है। मगर वास्तव में कहानी वैसी नहीं है। उपन्यास की शैली सुधा ओम ढींगरा ने बहुत सहज और सरल रखी है। जब कहानी वर्तमान में होती है तो संवाद शैली से आगे बढ़ती है और जब फ्लैशबैक में होती है तो किस्सागोई की शैली में। लेखक दोनों ही शैलियों में सिद्धहस्त है इसलिए उपन्यास की पठनीयता इस आवाजाही में बरकरार रहती है। विशेषकर किस्सागोई में तो सुधा ओम ढींगरा बहुत कुशल हैं, इसलिए जब उपन्यास तीन बार फ्लैशबैक में जाता है, तो किस्सागोई शैली के चलते उपन्यास की रोचकता और बढ़ जाती है। तीनों फ्लैशबैक पाठक की आँखों के सामने चलचित्र की तरह गुजरते हैं। दृश्य दर दृश्य उपस्थित होते हुए। डॉली, सायरा और दक्षिण भारतीय महिला के स्कैच पाठक की आँखों के सामने बन जाते हैं। तीनों कहानियों को बहुत मेहनत से लेखक ने विजुअल माध्यम की तरह गढ़ा है। उपन्यास की भाषा को भी लेखक ने शैली की ही तरह बिल्कुल सहज और सरल रखा है। आम बोलचाल की भाषा के संवाद गढ़े हैं, इस प्रकार की पढ़ते हुए पाठक को अपनी ही लगते हैं। जो चिकित्सकीय ब्यौरे हैं वह भी इस प्रकार हैं कि पाठक को आसानी से समझ आ जाते हैं। इस प्रकार का जटिल विषय उठाते समय इतनी सहज और सरल भाषा तथा शैली लेना बहुत आवश्यक है, जिससे कृति जटिलता का शिकार न होने पाए।

कुल मिलाकर यह उपन्यास 'दृश्य से अदृश्य का सफर' मानव मन के गहरे अँधेरे कोनों की पड़ताल की कहानी है। सुधा ओम ढींगरा ने कुछ नए पन्नों को हिन्दी पाठक के सामने खोलने का कार्य इस उपन्यास के माध्यम से किया है। यह भी संयोग है कि कोरोना की पहली लहर के बाद लिखा गया यह उपन्यास जब सामने आया, तब भारत दूसरी लहर की भयावहता से जूझ रहा था। हिन्दी में इस तरह के प्रयोग और होते रहें इसके लिए आवश्यक है कि इस तरह के प्रयोगों का स्वागत किया जाए। इस तरह की कृतियाँ जो एकरसता को तोड़ती हैं और कुछ नई दिशाओं की खिड़कियाँ खोलती हैं, इनके स्वागत करने से आने वाले समय में इस प्रकार के और प्रयोग सामने आएँगे। यह उपन्यास एक यात्रा है, उस अज्ञात की यात्रा, जो कुहासे में छिपा हुआ अज्ञात है। लेखक ने अपनी भाषा और शैली से इस यात्रा को दिलचस्प और रोचक बना दिया है।

लेखक– सुधा ओम ढींगरा, मूल्य– 150 रुपये,
प्रकाशन वर्ष– 2021, पृष्ठ– 152
प्रकाशन– शिवना प्रकाशन, सीहोर, म.प्रदेश, फोन– 07562405545

कविता

रमेश चंद्र आचार्य,
मदत्तपुर, वाराणसी 221002
मो. 9721566474

सबके के कुछ अरमान हैं

सबके कुछ अरमान हैं भाई।
कौन नहीं बेइमान है भाई।

छनती जिसकी साथ में जिसके
वह उसका भगवान है भाई।

जिसकी मर्जी कुछ भी कह ले,
मैं खुद ही नादान हूँ भाई।

मेरे भी जख्मों को देखो,
मैं खुद से अनजान हूँ भाई।

भगवान के पीछे

अनजान बना हूँ जाम के पीछे।
बदनाम हुआ हूँ नाम के पीछे।
काम नहीं कुछ इस जीवन में,
घूम रहा अरमान के पीछे।

मंदिर में ढूँढ़ा, मजिस्द में ढूँढ़ा।
गीता और कुरान में ढूँढ़ा।
सारे जहाँ संसार में ढूँढ़ा।
कहीं नहीं है वह फरिश्ता,
ठगा गया भगवान के पीछे।
अनजान बना हूँ जाम के पीछे।

तुम भी पिये हो, मैं भी पीऊँगा।
सब कुछ लुटाकर मैं भी जीऊँगा।
तुझको नशा है, मुझको नशा है,
फिर भी किसी को नहीं पाता है
घूमता रहा यूँ गुबार के पीछे।
अनजान बना हूँ जाम के पीछे।

हीरालाल अनजान
ग्राम महोखर,
तेन्दु, (उ.प्र)
मो. 6393291469

समीक्षा

केदारनाथ सिंह और उनकी काव्य कृति "अभी बिल्कुल अभी"

जितेन्द्र निर्मोही
आर. के. पुरम् कोटा
मो.– 9413007724

साठ का दशक रूप और सौदंर्य के गीतों का समय था जब शकील ''चौदहवी का चाँद हो या आफताब हो'' या ''नैन लड़ गई तो'' जैसे गीत लिख रहे थे। ऐसे समय में हिन्दी साहित्य के समकालीन कवियों का अपना सौंदर्य बोध सामने आ रहा था शमशेर बहादुर सिंह के 'पीली शाम', 'लौट आओ धार', 'टूटी हुई बिखरी हुई' जैसी कविताएँ बौद्धिक जगत को आल्हादित कर रही थी। उसके बाद मैं उस दौर के केदरनाथ सिंह की कविता ''जल हँसी'' पढ़ता हूँ तो उसका सौंदर्य देखता हुआ मगन हो जाता हूँ :–

''हँसी दी वह सुबह–सुबह
सिहरते जलाशय के लहरदार पानी में बालू पर,
सुखी जल घासों के इर्द गिर्द
हल्दी के पानी सी, हँसी वह फैल गई
दूर–दूर लहरों में
लहरों की भीतरी गुफाओं कंदराओं में
गूँजती चली गई।''

हल्दी पानी में डालने पर कितनी जल्द ही फैल जाती है हँसी का विस्तार यहाँ अप्रतिम है। कविता जब शब्द दर शब्द बिम्ब दर बिम्ब सार्थक शब्द चयन के साथ आगे बढ़ती है तो अत्यधिक आनंद देती है। हमारी संस्कृति का बोध जब कवि कराते हैं तो उसका जायका कुछ और होता है नायिका से अपनापन, कवि का लौटना और फिर आना क्रिया और दीप का जलाना, कविता ''दीपदान'' में देखी जा सकती है :–

''जाना, फिर जाना
उस तट पर भी जाकर
दिया जला आना
पर पहले अपना यहाँ आँगन
कुछ कहता है
उसे उड़ते पल्ले से
अढ़ुहल की डाल बार–बार उलझ जाती है।
एक दिया वहाँ भी जलाना।
जाना फिर जाना।''

कवि की कविता का फलक बड़ा व्यापक है। गाँव की बरात उसके पहले का आमंत्रण जिस पर हल्दी का रंग लगा हो यानी आपका बराती होना तय है। ऐसा दिन जो मेलजोल से विस्तार पाता है उसकी कई संभावनाएँ खुल जाती हैं। कवि की कविता है ''खोल दूँ यह आज का दिन''–

''खोल दूँ यह आज का दिन
जिसे मेरी देहरी के पास कोई रख गया है
एक हल्दी रंगे
दूरदर्शी पत्र–सा!''

पर एक प्रश्न कवि को चिंतातुर कर देता है, कहीं यह दूसरे का पत्र तो नहीं जिसके खोलने से खुलता है क्षितिज दिशाएँ खुलती है :–

''एक नन्हा सा
किलकिलाता सा प्रश्न आकर
हाथ मेरा थाम लेता है
कौन जाने अँधेरें में दूसरे का पत्र
मेरे द्वार कोई रख गया हो।
कहीं तो लिख रहा नहीं है
नाम मेरा
पता मेरा
आह, कैसे खोल दूँ।''

प्यार एक अहसास हैं, वो कहीं बिजली सा गिरता है, कही कौंधता है। आदमी है कि प्यार करता है। यह सच हैं कि कहीं कोई प्यार की रेखा हर कोई कवि में कौंधती है कभी तुम में कभी मुझ में यही प्यार है। कविता ''प्यार रेखा'' से–

''एक रेखा
जो कि बाँधती ही नहीं है
कभी तुम में
कभी मुझ में कौंध जाती है
हम उस को प्यार कहते हैं।''

प्यार की मादकता है लोकगीतों में पपीहा बोलता है तो नायिका की मादकता को आंदोलित कर देता है। उसका अपना बोलना अपने दिनों में बड़ा सुहाना खुबसूरत होता। केदार की कविता ''पपीहा दिन'' यही बोध कराती है।

''पपीहा दिन
आ गए
फिर
पपीहा दिन आ गए
गुफा कोटर
कुआँ पोखर
एक स्वर के सूत से
सब छोर–छोर मिला गए
फिर पपीहा दिन आ गया।''
पेज नं.– 73

केदार प्रकृति के चितेरे कवि हैं प्रेम का कवि प्रकृति से हमेशा अठखेलियाँ करता नजर आता है। उनकी कविता में प्रकृति भरी पड़ी है, भाषा का अपना प्रवाह है, उसकी सम्प्रेषणीयता भी तथा अलग एक अनूठा शिल्प भी

''चाँदनी में बह गए है, पेड़

रस्ते,
मोड़
कहीं गहरे मिल रहे है
एक चुप अनबुझ लय में
अँधेरा
इतिहास
खुशबू पत्तियों का शोर।''

कवि अपने अनुभवों का तेजी से सामान्यीकरण करता जब दिखाई देता है तो उसके अनुभवों के बिम्ब सितारों की तरह चमकते है। कृति के फ्लेप पर सच कहा हैं ''प्रकृति केदार की कविताओं का विषय नहीं सहचरी है। वे उसको देखते भी हैं उजास भी लेते है उसकी पुनः रचना भी करते हैं। इसी तरह लोक और उसमें रचा बसा घर और घर में बुने हुए रिश्ते इन सबकी इयता उनके शब्दों के साथ–साथ चलती है, उनसे अपना नया रूप पाती है, एक नई परिभाषा जो हमें नये सिरे से जीने का भरोसा और उम्मीद देती है।'' इस संकलन की पहली कविता ''प्रक्रिया'' ही इस दृष्टिकोण से देखी जा सकती है।

''मैं
जब हवा की तरह
दृश्यों के बीच से गुजरता हुआ
अकेला होता हूँ
तो क्षण भर के लिए
मुझे कहीं भी देखा जा सकता है,
किसी भी मोड़ पर
किसी भी भाषा में अज्ञात शब्द कोष में।''

प्रकृति के सुंदर प्रतिको के माध्यम से केदार की एक कविता ''अपनी छोटी बच्ची के नाम'' बड़ी खुबसूरती से प्रस्तुत करते हैं :–

''ओस भरें काँपते गुलाब की टहनी पर
तितली के पंखों से सटी हुई
धूप।
एक नाम है हल्का सा
मेरे बेस्वाद खुले होठो पर तेरे लिए।''

हस्ताक्षर करना स्वीकृति है और जीवन विवशता प्रकृति के उपमानों के साथ हस्ताक्षर करता हूँ सही कहा है केदार जी ने वे सबकी आवाज सुनते हैं। प्रकृति का कौना कौना मन का रेशा रेशा, जहाँ स्पंदन है, केदार जी कविता अपनी पूरी संवेदना के साथ वहाँ पहुँच जाती है। जीवन जीने की एक प्रक्रिया हर :–

''ऋतुओं में जाता हूँ
टूटे भूरे उदास
वृक्षों की छालों से
आकांक्षा के जीवित रेशे
अलगाता हूँ
उड़ने से पहले
हर दिशाहीन चिड़िया के
पर में उलझता हूँ
और कहीं
जीने की
दैनिक शर्तों पर
हस्ताक्षर कर देता हूँ।''

''अनागत'' मन की प्रवृत्ति की कविता है, जहाँ विचारों का गुंफन है, स्मृतियाँ है, कोई है जो न आता है और न जाता है उसका क्या किया जाए :–

''बाँसुरी को छेड़ता है
खिड़कियों के शीशे तोड़ जाता है
किवाड़ों पर लिखें नामों को मिटा देता है
इस अनागत को करे क्या
जो न आता है न जाता है।''

कवि अपने समय की हर गतिविधियों से परिचित है। उसके सामने स्पुतनिक का सफल अंतरिक्ष अभियान भी है जो रोजमर्रा की जिंदगी से अलग यह देश की वैज्ञानिक उपलब्धि है। जिससे वे स्वयं को सीधे–सीधे जोड़ कर कविता रचते है :–

''एक लकीर
पृथ्वी के सारे अक्षांशों से होती हुई
जैसा सौर मंडल के पास
खो जाती है
वहाँ मैं खड़ा हूँ।''

कवि अभिव्यक्ति और विचारों की जुगलबंदी के साथ खड़ा रहता है। उसके साथ जिंदगी के सारे उपक्रम हैं। हंसी–गम, सोच–विचार, आशा–निराशा, शंका–आंशका सभी कहाँ हैं। वो शंका को ''शंकापुत्र'' बताकर कविता रचते है :–

''एक बच्चा
और मैं
दो बराबर फासले पर
नम सुबह की भाप में
चुप चले रहे है लिपटे हुए
न जाने कब से।''

कवि की शाम का चित्रण यह अनूठी है। ''शाम''– ''हवा शांत है/ लोग भागते हुए/ स्वयं के साथ दौड़ती/परछाई से अलग/ तेजतर!'' वहीं कवि ''सूर्यास्त'' को चित्रांकित करता है बिम्ब–दर–बिम्ब जैसे वो शब्द के रंगों की कूंची को चला रहा हो ''दिन ढ़लने के बाद /लाल, भूरी/ हरी नीली, पीली/ संख्यातीत/ फर फराती/धूप की उल्टी पताकाएँ/ टूट/ वृक्षों पर/उलझ कर रह गई!''

हांलाकि सम्बंधों के बीच मनुष्य खो जाता है :– ''एक वृत है/ जिसमें खो जाता है/ एक आकार।'' मनुष्य की यात्रा की नियति ही इन संबंधों को खोज में है एक दौड़ अनाहूत क्षण तक है :–

''छोटे से आंगन में
माँ ने लगाए हैं
तुलसी के बिरवे को
पिता ने उगया है
बरगद छतनार
मैं अपना नन्हा गुलाब

कहाँ रोप दूँ
मुट्ठी में प्रश्न लिए
दौड़ रहा हूँ वन–वन
पर्वत–पर्वत
रोती–रोती
बेकार।''

कवि अपनी रचना धर्मिता में पारिवारिक मर्म और धर्म दोनों रेखांकित करता है। वह अपने पिता की आदिम व्यथा को जो एक सोना की जलती पिटारी में बंद है, स्मृतियों में रखना चाहता है, वह मौन जो सुरक्षित है, जिसे वो बनाए रखना चाहता है :–

''मुझे दिये जाओ/मैं रखूँगा/गिरने न दूँगा/कभी बुझने न दूँगा पिता/वह आदिम व्यथा/ जो कि तुमको मिली थी/ एक सोना की जलती पिटारी में बन्द/ कही बरसों से /इस घर की अनजानी/ मिट्टी में गड़ी हुई ''मुझे दिये जाओ/ मैं रखूगाँ।'' घर के रूप में एक खाली कमरा भी उन्हें अपनी पूरी भयावहता में नजर आता है अन्ततः एक सकारात्मक बिंदु दिखाई देता है जहाँ से वे आगे की यात्रा करते हैं– ''आज भी खड़ा है वहाँ मेरी प्रतिक्षा में/ बड़े–बड़े डैने वाला/ कमरे का दानव/ उसे सब ज्ञात है/ इसलिए कभी कुछ पूछता नहीं है/ जब बाहर से आता हूँ/ चुपके से क्षत विक्षत डैने उठा कर/मुझे जगह दे देता है/ मानों कहता हो/अब बहुत थक गए हो/ तुम योद्धा विश्राम करो।'' यहाँ कविता में इस समय की सार्थक बैचेनी है।

केदारनाथ प्रकृति के कवि है वो प्रकृति से रूबरू हो जाते हैं उसके रेशे–रेशे से बात करना चाहते हैं वो दिन, रात, शाम, दोपहर से बात करना चाहते हैं। वो बात करना चाहते हैं सूरज, चाँद, सितारों से, वो बहारों से बात करते हैं, खींजा से बात करना चाहते हैं। उनकी ''सुबह की पतझर'' से बातें हैं :–

''मैंने जब मना किया
पीले पत्ते बटोर
उठकर चुप चली गई
खंडहर की ओर
उधर झाड़ों झंखाड़ों में,
और अकारण पगली
मुँह पर पत्ते रखकर
हँसती ही जाती थी
हँसती ही जाती थी
ओझल हो जाने तक।''

केदार के प्रकृति से जुड़ने में कई रूप हैं। वो धान के बच्चे बनकर बादल को पुकारते हैं– ''हम नए नए धानों के बच्चे/ तुम्हें पुकार रहे हैं/ बादल ओ/बादल ओ/बादल ओ।'' केदार गरजते बरसते बादलों के साथ है, वह कहते हैं–

''तुम गरजो/ पेड़ चुरा लेगें गरजन/तुम कड़को/ चट्टानों में बिखर जायेगी वह कड़कन! तुम बरसो/ फूट पड़ेगी प्राणों की उमड़न कसकन/ फिर हम अबाध भीजेंगे/ झूमेंगे/ बरसने से चारो ओर/ हरियाली छा जायेगी नीले आसमान को छू लेगी/ बादल तुम्हें पक्षी गांऐगे/ और नए खेतों की हवाओं में तुम बस जाओंगे।'' इस प्रकृति से उनका रागात्मक लगाव होता है, जिससे उनकी कविता का फलक व्यापक हो जाता है। वो बच्चे बनकर इन्दधनुष को याद करते हैं– ''छत पर आकाश/ आकाश में रखी हुई/संतरगें बांस की टेढ़ी सी कुर्सी में/ मैं हूँ।'' केदार प्रकृति के बादलों से ही प्यार नहीं करते वो अधड़ की प्रतीक्षा करते हैं और अंधड़ के साथ घूमने जाने का मन बनाते हैं–

''अभी उट्ठेगा जरा सी देर में
अंधड़!
फिर चलेगें घूमने
बहार!
फिर जहाँ तुम ले चलोगे,
चलूँगा मैं साथ
हवाओं के थपेड़ों में
एक टूटे हुए रेशे की तरह
पकड़े हुए तुम्हारा हाथ।''

सच है काव्य संग्रह ''अभी बिल्कुल अभी'' की काव्य वस्तु, भाषा–शैली अनुभव परक स्थिति में दिखायी देता है। सम्पूर्ण कविताओं में अपना सहज प्रवाह है। उनकी दृश्यात्मकता, कथ्य एवं लयात्मकता के साथ चलती दिखाई जाती है। इन कविताओं में आवेग या आक्रोश कहीं भी दिखायी नहीं देता है। इन कविताओं में आवेग है वह है अनुभूति का आवेग जो सृजनरत केदार के पास आकर थम जाता है। इसलिए केदारनाथ सिंह समकालीन कविता में बिल्कुल अलग दिखाई देते हैं, उनको पढ़ने में आनंद भी आता है, और एक कवि का कविधर्म साफ–साफ दिखाई देता है।

संग्रह को देखने पर इसका पहला संस्करण 1960 में प्रकाशित हुआ इसके बाद राज कमल प्रकाशन से जो 2016 में प्रकाशित हुआ सामने आता है। इस संस्करण में केदारनाथ सिंह स्वयं पुस्तक के प्रारंभ में कहते हैं कि ''इसका प्रथम संस्करण सुप्रसिद्ध कथाकर मार्कण्डेय द्वारा नया साहित्य प्रकाशन मिंटों रोड़ इलाहबाद से कराया था। इस नवीन संस्करण को मैं कथाकार मार्कण्डेय की स्मृति को समर्पित करता हूँ।'' इस आलेख को विराम इस गद्य की अंतिम कविता ''हम जो सोचते हैं'' कविता के प्रारभिंक पद्यांश से देना चाहता हूँ।

''न रास्ता कहीं मुड़ता है
न सड़कें कहीं जाती हैं
'हम'
एक जय घोष हैं
जिसे हवा
घर से चौराहे तक
दिन भर भटकाती है।''

I eh{kk

आदर्श और व्यवहारिक जीवन के बीच प्रेम की पड़ताल

अमरेन्द्र सुमन
दुमका (झारखंड)
मो–9431779546

जल, जंगल, जमीन से जुड़े हाशिये के जनमुद्दों और झारखण्ड के आदिवासी समुदाय के संघर्ष, शोषण व आंदोलनों के साथ–साथ सामाजिक, सांस्कृतिक मान्यताओं, परंपराओं और लोकसाहित्य एवं लोककलाओं पर लगभग पिछले दो–ढाई दशकों से शोध पत्रकारिता करने वाले युवा लेखक पत्रकार अशोक सिंह आज किसी परिचय के मोहताल नहीं हैं। स्वतंत्र पत्रकारिता एवं सामाजिक कार्यो के अलावा साहित्य की अलग–अलग विधाओं के माध्यम से झारखण्ड सहित राष्ट्रीय फलक पर एक सफल कवि एवं निबंधकार हैं। समाज की मुख्यधारा से कटकर जंगल, नदी पहाड़, झरना, खेत–खलिहान व सुदूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों में निवास कर रहे आदिवासी समुदायों के बीच रहकर उनकी दिनचर्या में खुद को शामिल करते हुए अपने जीवन के कई साल गुजार देने वाले कवि अशोक सिंह ने जहाँ एक ओर आदिवासी जीवन व संस्कृति को करीब से देखा, सुना और गुना, वहीं दूसरी ओर उसके संघर्ष और आंदोलनों में शामिल होकर उसकी आवाज को भी बुलंद करता रहा। इस बात को उनके पिछले दो दशक की स्वतंत्र पत्रकारिता और वर्ष 2004–05 में भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली से प्रकाशित उनके द्वारा किये गये संताली कविताओं के हिन्दी अनुवाद का अनुदित चर्चित व विवादास्पद संग्रह 'नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द' से जोड़कर देखा–परखा जा सकता है। अव्यवस्थित जीवन की अस्थिरता, संघर्ष, उपेक्षा, आर्थिक कठिनाईयों व सामाजिक, पारिवारिक उलाहनाओं के बीच रहकर भी अपने स्वाभिमान को बचाये रखते हुए जिस हिम्मत हौसले और न उम्मीदों में भी उम्मीदों के साथ उन्होंने साहित्य की दूरियाँ नापी और एक–एक कदम चलते हुए अपनी मुकम्मल पहचान बनाई वह महत्त्वपूर्ण ही नहीं, प्रशंसनीय भी है। बिना किसी लाग–लपेट के, बिना किसी बाहरी दबाव व झिझक के पूरी सच्चाई, ईमानदारी व दमखम के साथ अपनी बातों को रखना युवा कवि पत्रकार अशोक सिंह की खासियत रही है। वे न तो खुद छिपना जानते हैं और न ही अपने आपको छिपाकर अपनी बातों को रखना। उनमें न तो अपने बुरे होने या कहे जाने का भय व संकोच दिखता है और न ही अपने किसी किये हुए अच्छे–बुरे कार्यो को लेकर आत्ममुग्धता ही। वे प्रेम भी करते हैं तो छुप कर नहीं करते। किसी के प्रति समर्पित हैं तो उसके लिये नगाड़े नहीं बजाते। किसी के विरोध में बातें रखनी होती है तो उसके परिणाम की चिन्ता नहीं करते। विवादों में रहकर भी उन्होंने कभी किसी से विवाद नहीं किया। बल्कि जो कुछ देखा–सुना, जीया–भोगा, बिना किसी लाग–लपेट के, बिना किसी शब्दों के आवरण के सीधा–सीधा कह दिया। अभी–अभी हाल में आया उनका पहला कविता संग्रह ''कई–कई बार होता है प्रेम'' से गुजरते हुए ऐसा प्रतीत होता है।

यह कविता संग्रह अशोक सिंह की श्रमशीलता, जीवटता, प्रगतिशीलता व अध्ययनशीलता का सामूहिक कोलाज मात्र नहीं है बल्कि समकालीन कविता के इस दौर में उनकी कविताएँ आम आदमी के भीतर उसके दिलो दिमाग में पूरी सहजता के साथ उतरने में सक्षम है। यह अलग बात है कि आज हिन्दी साहित्य विशेषकर समकालीन कविता में जो स्थान उन्हें मिलना चाहिये वह उन्हें नहीं मिल पाया है। लेकिन गौरतलब हो कि देश कि विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं जैसे– वागर्थ, नया ज्ञानोदय, कथादेश, साक्षात्कार, समकालीन भारतीय साहित्य, इन्द्रप्रस्त भारती, साहित्य अमृत, आजकल, अक्षर पर्व, पाखी, दोआबा, कादम्बिनी, परिंदे, विपाशा, मधुमती, युद्धरत आम आदमी एवं वसुधा आदि में प्रमुखता से प्रकाशित साथ ही साथ विभिन्न भारतीय एवं क्षेत्रीय भाषाओं में हुए उनकी कविताओं के अनुवाद इस बात का प्रमाण है कि उनकी कविताओं का एक बड़ा पाठक वर्ग भी है।

कविता संग्रह ''कई–कई बार होता है प्रेम'' की बात करें तो इसमें कवि की कुल 68 कविताएँ हैं। तमाम कविताएँ जीवन की अलग–अलग घटनाओं उसकी स्मृतियों संवेदनाओं व जीवानुभवों के साथ–साथ विविध विचारों से उत्प्रेरित एवं अनुप्राणित हैं। उनकी कविताओं में जहाँ एक ओर टूटन–घूटन, सफलता–असफलता, विश्वास और समर्पण, आसक्ति–विरक्ति और हार कर जीतने व जीत कर हारने की मार्मिक पीड़ा है, वहीं दूसरी ओर घर– परिवार, आस–पड़ोस के साथ–साथ माँ, पिता, बहनें, दादी, औरतें, लड़कियाँ, दोस्त, दुश्मन, बिछुड़े हुए लोग, टूटा हुआ आदमी, बाजार, महंगाई, अकाल, अपने गाँव की पुस्तैनी जमीन होस्टल के लड़के, काली लड़की, अकेली औरत, से लेकर सभागार के बुद्धिजीवी तक और अपनी खामियों, कमजोरियों तक की ईमानदार अभिव्यक्ति है।

इस कविता संग्रह में माँ को समर्पित उनकी पहली कविता 'माँ का ताबीज' में जहाँ एक ओर अंधविश्वास के खिलाफ प्रतिरोध है वहीं दूसरी ओर माँ के प्रति विश्वास और आस्था को प्रकट करता है। वह नहीं जानता माँ के दिये हुई ताबीज का गणित और उसके पीछे का रहस्य। वह बस इतना जानता है कि माँ के दिये हुए ताबीज में उसका विश्वास बंधा है। उसकी आस्था जुड़ी है। कविता के अंत की ये पंक्तियाँ ''माँ मैं ताबीज नहीं/तुम्हारा विश्वास पहन रहा हूँ माँ/पहन रहा हूँ तुम्हारा विश्वास।'' इसी तरह 'बहनें और घर' में कवि ने एक घर में बहनों की उपस्थिति और उसके महत्त्व के साथ–साथ पूरे घर के भूगोल, अर्थशास्त्र व समाजशास्त्र में उनकी भूमिका को अपने शब्दों में अभिव्यक्त करता है। कविता की इन पंक्तियों को गौर से देखें– ''बहनें गीली लकड़ियों से भी बना लेती हैं घर की रसोई/वे अंधेरे में भी टटोल लेती है माचिस की डिबिया/वे जानती हैं तेज हवाओं से बचाना संझोती का दीया।'' अंतिम पंक्तियाँ कुछ प्रकार हैं– ''वे होती है/माँ के हाथ/पिता की आँखें/घर की ताजा हवा/ घर से विदा होने तक नहीं जानतीं वे/कि उन्हीं से यह घर था।'' कवि की सोच जितनी बड़ी और निराली है कहने का अंदाज भी उतना ही प्रभावकारी व आकर्षक है। अपनी अगली कविता 'मुझे ईश्वर नहीं तुम्हारा कंधा चाहिए' में कवि ने ईश्वर के अस्तित्व की बातें तो स्वीकारी है किन्तु

उसने यह भी कहा है कि उसने ईश्वर को कभी नहीं देखा। कवि कहता है– "मुझे सिर झुकाने के लिये ईश्वर नहीं/सिर टिकाने के लिये/एक कंधा चाहिए/ और वो ईश्वर नहीं तुम दे सकती हो।" जीवन के झंझावातों से जुझते, गुजरते हुए जब–जब भी कवि मानसिक, शारीरिक पीड़ा व थकान का अनुभव करता है तब–तब ईश्वर को नहीं किसी बहुत अपनों और उसके कंधे को याद करता है। इसी तरह 'तुम मानो या न मानो' में कवि पूरी सच्चाई से इस बात को रखता है कि – "तुमसे प्रेम करना है/यह सोचकर नहीं किया तुमसे प्रेम/सुसताने को तलाशा जब–जब कोई छाँव/ चिलचिलाती धूप में तन्हा चलते/तब–तब पेड़ की घनी छाँव सी मिली तुम।" कविता की इन पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह सिर्फ प्रेम के लिये, किसी से प्रेम नहीं करना चाहता। प्रेम वह इसलिये करना चाहता है कि व्यावहारिक में उसकी ऊर्जा से एक साफ–सुथरी, सुंदर व सफल जीवन जी सके। वह कहता है– "जब कभी भी जरूरत पड़ी किसी सहारे की/वहाँ सिर्फ तुम्हारे ही हाथ दिखे।" ये वही हाथ थे जो कभी कवि के निराश मन को अपनी संवेदनाओं के सहारे थामे खड़े थे। कविता की कुछ अगली पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–"थका हारा जब–जब लड़खड़ाया/लरजते हुए चाहा टिकाना कहीं अपना सिर/वहीं पाया तुम्हारा कंधा।" प्रेम में विश्वास की जड़ें कितनी गहरी व टिकाऊ होनी चाहिए, कविता की उपरोक्त पंक्तियों से गुजरते हुए सहजता से समझा जा सकता है। कवि भावनात्मक रूप से इस कविता में खुद को काफी अंदर तक जुड़ा पाता है, जबकि कविता 'एक दुश्मन दोस्त के साथ रहते हुए' में वह ठीक उसका उल्टा पाता है। कवि कहना चाहता है कि जिन यातनाओं से तंग आकर वह कभी न लौटकर वापस आने की प्रतीज्ञा लेकर निकल पड़ा था, थक हारकर फिर उसे वहीं आना पड़ा। एक ऐसे यातनागृह में, उसे लौट आना पड़ा जहाँ न जेल की सलाखें हैं, और न ही ऊँची–ऊँची दीवारें। न ही बड़े–बड़े दरवाजे हैं और न ही दरवाजे पर खड़े मुश्तैद पहरेदार। कवि की स्वतंत्रता यहाँ कैद होकर रह जाती है। पंख तो है किन्तु पंख फड़फड़ाकर उड़ने की आजादी उससे छीन ली गई है। लाख प्रयास के बावजूद वह प्रेम के पिंजरे से आजाद नहीं हो पा रहा। इस कविता में कवि का दर्द कुछ इस कदर छलक पड़ा है। कवि कहता– "एक भरी पूरी देह है/ जिसकी गुफाओं में मैं कैद हूँ बारह वर्षो से/ एक जोड़ी बड़ी–बड़ी आँखें हैं/धोखे और फरेब से भरी हुई/जिसमें नजरबंद हूँ सन उन्नीस सौ चौरानवे से।"

प्रेम के अलग–अलग रूप हैं, अलग–अलग रंग। अलग–अलग अनुभव, अलग–अलग विचार, प्रेम को लेकर अलग–अलग मान्यताएँ, धारणा हैं। प्रेम की जितने मुँह उतनी बातें हैं, प्रेम के बारे में कोई कहता है– प्रेम जीवन में सिर्फ और सिर्फ एक बार होता है तो कोई इसे मानने से इनकार करता है। आदर्श और व्यावहारिक जीवन के बीच प्रेम के यर्थाथ को जानने समझने की कोशिश करता कवि अपने अनुभवों से कहता है "कई कई बार होता है प्रेम"। पुस्तक के नामकरण से जुड़े इस शीर्षक कविता में कवि कहता है– "किसने कहा इतना बड़ा झूठ/कि प्रेम जीवन में एक बार होता है/सच तो यह है/जाने–अनजाने/कई–कई बार होता है जीवन में प्रेम/कई कई बार होता है/यह सब हमने जाना प्रेम में पड़कर।" अंतिम पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार हैं– "वैसे भी इस दौर में/प्रेम में धोखा खाने/और दूबारा फिर कभी किसी से/प्रेम न करने की घोषणाओं के बावजूद/हम तलाशते हैं दुख के क्षणों में किसी का कंधा/तब क्या सचमुच हम कह सकते हैं पूरे विश्वास से/इस अविश्वास भरे दौर में पूरी ईमानदारी से/कि प्रेम जीवन में सिर्फ व सिर्फ/एक बार होता है/कह सकते हैं दिल पर हाथ रखकर पूरी ईमानदरी से?" कितनी साफगोई और ईमानदारी से यह बात सामने आयी है कि एक बार किसी से प्रेम करने व उससे धोखा खाने के बाद व्यक्ति अनन्तकाल के लिये कोमा में नहीं चला जाता बल्कि प्रेम पाने को लेकर एक नई आशा, एक नई उम्मीद आदमी के मन में हमेशा बनी रहती है। व्यावहारिक जीवन में देखें तो बचपन से लेकर किशोरवस्था और किशोरावस्था से लेकर युवा व प्रौढ़ावस्था तक जाने–अनजाने जीवन में कोई न कोई मोड़ और कोई न कोई पड़ाव आते–जाते रहते हैं। कई मिलते–बिछुड़ते हैं और उनकी स्मृतियाँ जीवन में जुड़ती चली जाती हैं।

कविता "बिछुड़े हुए लोग" में कवि महसूस करता है कि बिछुड़े हुए लोगों की तादाद लम्बी होती है किन्तु कुछ चेहरे ऐसे होते हैं, जिसकी स्मृतियाँ जीवन में ऐसे घुलमिल जाती हैं जिन्हें भूल पाना काफी कठिन होता है। "तुम्हारे साथ रहते हुए हमनें जाना" में कवि प्रेम में पड़कर बहुत कुछ खोने के साथ–साथ बहुत कुछ पाने की भी ईमानदार स्वीकारोक्ति सबके सामने रखता है। जंगल, पहाड़ का दुख, नदियों की खामोशी, उनकी विवशता, औरतों का श्रम उसका गीत–संगीत, जानवारों को चराते उसके बच्चों के निश्छल स्वभाव, उसकी जिज्ञासा, उसकी भूख, गरीबी, उसका शोषण, उसका संघर्ष और उसके इतिहास के साथ हुए छल–प्रपंच को भी कवि उसके साथ रहते हुए ही समझ पाया। इतना ही नहीं कुल्हाड़ियों के भयानक सपने से जंगल की चीख, कुहाते पहाड़ व अंधेरे में मुँह ढांपकर रोती नदियों के अकल्पनीय दृश्य न कवि को आदिवास चेतना का एक सजग कवि उसके साथ रहते हुए कवि आदिवासी चीजों को आदिवासी दृष्टि से देखना सीखा। तभी तो कवि तन के गोरे व मन के काले फरेबी–परदेशियों की दोहरी नीति, गंदी चाल, गिरगिट सा स्वभाव, शोषण, दमन व उनके अत्याचार के विरुद्ध उसके सामूहिक संघर्ष में उसके साथ जा खड़ा हुआ और "उठो काली औरतों गाओ कोई गीत" अपनी कविता में कवि कह उठा– "उठो काली औरतों/देखो बुला रहा मनमीत/इस काली अंधेरी रात में गाओ कोई गीत/घर उजड़ा, जंगल उजड़े/उजड़े खेत–खलिहान/उठो जागो कदम बढ़ाओं/अबकी होगी तुम्हारी जीत/इस काली अंधेरी रात में/मिलकर गाओ कोई गीत।" भरोसे की जिन्दगी, दान–दया की रोटी और दिखावटी सहानुभूति से मन व शरीर को लूटने वालों के खिलाफ कवि काली औरतों को खबरदार करना चाहता है। काली औरतों को देना चाहता है हौसलों का पंख ताकि संगठित होकर सामूहिक रूप से वह प्रतिरोध कर सके।

जिस वातावरण, जिस परिवेश और जिस कालखंड में कवि जन्मा, पला–बढ़ा, जवान हुआ उस प्रविेश में रहकर उसने कई–कई सपनों को अपनी आँखों के सामने दम तोड़ते हुए देखा है। उसने देखा है जंगल पहाड़ को उजड़ते, भूख और पलायन से टूटते–बिखरते, जिसमें कहीं काली लड़की के सपनों में छलता गोरा रंग, तो कहीं उसके भीतर पसरी काली अंधेरी रात का सूनापन। वह कहता है–

''गोरा लड़का नहीं मिलना चाहता है काली लड़की से/और काली लड़की डरती है रात के अंधेरे में गोरे लड़के संग मिलने से।'' इतना ही नहीं, काली लड़की के कालेपन से जब कोई रिश्ता टूट जाता है तब टूट जाती है अंदर से काली लड़की। काली लड़की जानती है, गोरापन उसके जीवन का स्थायी समाधान नहीं है। उसके लिये वही काला रंग ठीक है जो जीवनपर्यन्त उसके साथ होगा। इस प्रकार ''काली लड़की'' शीर्षक कविता में कवि ने काली लड़की के मन की बात को बड़ी सूक्ष्मता से टटोलने का प्रयास किया है।

संग्रह में अलग–अलग रंग, अलग–अलग मिजाज की कविताएँ हैं। अपने शहर की एक चर्चित कवयित्री के पलायन पर लिखी गई कविता 'एक सामूहिक शोकगीत' एक विशेष प्रकार की कविता है, जिसका अपना कुछ अलग ही मिजाज है। कवि जीवन की जिन वास्तविकताओं से रुबरु होना चाहता था, वहाँ उसे नफरत, जिल्लत व घृणा के अलावे कुछ भी न मिला। जिस संघर्ष में शामिल होकर कवि अपनी कविता और उससे जुड़े पात्र को एक मुकाम तक पहुँचाना चाहता था, उसे स्थापित करना चाहता है, उसकी आवाज को बुलंद करना चाहता था, उसी पात्र ने कवि के सपनों को, उसके विष्वास को, उसकी आस्था को, उसकी उम्मीदों आकांक्षाओं को, सस्ती लोकप्रियता की अंधी दौड़ में अपने पैरों तले रौंदा दिया। जिसके परिणाम स्वरूप संभवतः कवि की तार–तार हुई आत्मा से निकली होगी यह कविता, जिसमें उसकी आत्मकथात्मक व्यथा ही सुनाई पड़ती है। लेकिन इस कविता के मूल में जो एक महत्त्वपूर्ण बात है, वह है एक कवि–लेखक के लेखकीय व सामाजिक सरोकार में आया भटकाव। जिसको लेकर अपनी इस कविता में कवि सवाल उठाता है। यह कविता अपने कई अर्थों में बहुत ही महत्वपूर्ण और अलग से चर्चा के योग्य है। एक कवयित्री के लेखन और उसके सामाजिक सरोकार के बीच बढ़ती खाई और उससे जुड़े विरोधाभासों को कवि देखने–दिखाने की कोशिश करता है। उसकी कविता से जुड़े विभिन्न पात्रों के जीवन की सारी सच्चाईयों को परत–दर–परत खोलकर रख देती है यह कविता। कविता लम्बी जरूर है पर बोझिल नहीं। जिस उम्मीद, उर्जा व विश्वास के साथ उसने उसका दामन थामा और एक अनाम सी बस्ती की टूटी–बिखरी झोपड़ी से हाथ पकड़कर बाहरी दुनिया से रुबरु कराया, उसके कंधे से कंधे मिलाकर संघर्ष किया, उसके जीवन को एक नया अर्थ दिया, उसे जमीन से उठाकर आसमान की बुलंदियों तक पहुँचाया उसी ने अपने छोटे–छोटे स्वार्थ की खातिर उसके विश्वास को कुचल डाला। कवि कहता है– ''पलायन पर लिखते–लिखते/हमारे शहर की एक चर्चित कवियत्री खुद/अपने क्षेत्र से पलायन कर गई/और बोलते–बोलते व्यवस्था के खिलाफ/घुल–मिल गई व्यवस्था में।'' व्यवस्था व पलायन के मुद्दे पर आवाज उठाने वाली कवियत्री खुद उसी व्यवस्था से ऐसी घुल–मिल गई और अंततः उसी व्यवस्था का हिस्सा होकर रह गई। चीख–चीख कर जिस दिल्ली को जिन्दा दफन होते लोगों का श्मशान, व सोने की मायावी लंका कहकर कोसती रही, उसी दिल्ली से वह अपना दिल लगा बैठी। अब दिल्ली उसके लिये ठीक उसी तरह हो चुका है जैसे किसी कस्बे का बाजार हो। जब तक दूर रही दिल्ली से, दिल्ली को गरियाती रही, धिक्कारती रही दिल्ली वालों को। जिस तबके, जिस वर्ग, जिस व्यवस्था की जमीन पर खड़ी हो, दिखाती रही अपनी उपस्थिति का दमखम, एक दिन उसी व्यवस्था की रंगिनियों में खो गई। अब तो वह अपने उस दढ़ियल दोस्त को भी भूल चुकी, जो कभी अपना सब कुछ भूलकर जंगल–पहाड़, हाट–बाजार से लेकर नगर महानगर तक एक–एक कदम उसकी परछांई बना कदम–कदम पर उसका साथ देता रहा। जिसने दुनियादारी की पेंचिदगियों से खबरदार करते हुए व्यवस्था से लड़ने का हौसला दिया, कलम को शब्द दिये। डायन के नाम पर पिटती पकलु बुढ़िया और सजोनी किस्कु की चीख को सुनना–गुनना सिखाया। नदी में स्त्री और स्त्री में नदी, पेड़ में आदमी और आदमी में पेड़ को देखना सिखाया, वह अब सस्ती लोकप्रियता के मोहजाल में फँसकर बड़े–बड़े पुरस्कार, सम्मान की आदी हो चुकी है। उसकी चर्चाओं में अब नामचीन हस्तियाँ, ओहदे वाले लोग ही अक्सर होते हैं। कविता की इन पंक्तियों को देखें– ''अब उसे पता नहीं है/अपने शहर से काठीकुण्ड, शिकारीपाड़ा/और रायकिनारी की ओर/जाने वाली गाड़ी का नाम और समय/ड्राईवर, कंडक्टर, खलासी के चेहरे और नाम/तो वह कब का भूल चुकी है/पर वह बता सकती है ठीक–ठीक/दिल्ली की ओर जाने वाली/गाड़ियों के नाम और समय।'' कवि कहता है– ''यह उसका विकास नहीं तो और क्या है/कि वह अपने शहर और कस्बो से ज्यादा/दिल्ली को जानती है।''

यूँ तो इस काव्य संग्रह की अधिकतर कविताएँ प्रेम और कवि की जीवन के आसपास घूमती है लेकिन प्रेम और व्यक्तिगत आशा निराश कुंठा से अलग घर–परिवार और सामाजिक सरोकार से जुड़ी कविताएँ भी इसमें देखने को मिलती हैं, जिसमें ऊँच–नीच, अमीर–गरीब, गोरे–काले, सामाजिक विसंगतियों, विडंबनाओं, झूठे आश्वासनों पर भी तीखा प्रहार करती नजर आती है।

कविता संग्रह में 'पीले पड़ते प्रेम प्रत्र' से कवि अपनी लेखनी को विराम देता है। वह कहता है– ''जैसे–जैसे उधर/पीले पड़ते जा रहे हैं/तुम्हारे पास मेरे प्रेम पत्र/वैसे–वैसे इधर–आने लगी है मेरे बालों में सफेदी/जैसे उधर/धुधंली पड़ती जा रही है उसकी लिखावट/वैसे वैसे इधर/धुंधलाने लगी हैं मेरी स्मृतियाँ/जैसे–जैसे उधर/टूटने लगे हैं उसके तह/वैसे वैसे इधर/टूटने लगा हूँ अंदर से मैं भी.../जब तक वो बचे रहेंगे तुम्हारे पास/शायद तब तक/ मैं भी बचा रहूँ इस धरती पर!'' अशोक सिंह की प्रेम कविताओं में कहीं–कहीं भाव और भाषा का अतिक्रमण दिखाई पड़ता है लेकिन सुखद बात यह है कि उनकी अधिकतर प्रेम कविताएँ जितनी सरल व सरज हैं उसमें प्रेम की कोमलता भी उतनी ही कोमल है। वास्तव में यह कविता संग्रह उन पाठकों को सबसे अधिक रोचक व उपयोगी लगेगी जो प्रेम में लहुलूहान हुए हैं, बावजूद प्रेम करने से नहीं चुकता! कई–कई बार जिन्हें प्रेम के अलग–अलग इम्तिहान से गुजरना पड़ा हो।

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर
मूल्य : 150 रुपये मात्र।

lehkk

काव्य सृजन को सार्थकता प्रदान करता 'कविता का जनपक्ष'

डॉ शीलचंद पालीवाल
वाचनालय रोड
विदिशा–464001

शैलेंद्र चौहान की आलोचला पुस्तक 'कविता का जनपक्ष' काव्य सर्जकों एवं पाठकों के विवेक को समृद्ध करने वाली एवं परिपक्वता देने वाली पुस्तक है। पुस्तक के नाम के अनुरूप ही लेख और निबंध इस बात को बहुत–बहुत स्पष्ट रूप से एवं संजीदगी से यह इंगित करते हैं कि यद्यपि कविता जैसा कि एक समय में माना जाता था कि मनोरंजन करके धन, यश, संतोष, आनंद और एडवेंचर आदि अनेक व्यक्तिगत उद्देश्यों से प्रेरित होकर लिखी जा सकती है किन्तु सार्थक कविता वही है जो जन कल्याण की भावनाओं को प्रतिष्ठा दे सके। अन्य प्रेरणा–प्रयोजन से लिखे गए काव्य की सार्थकता और मनुष्य की चेतना के विकास में योग न करने वाले सृजन से शैलेंद्र जी संतुष्ट नहीं होते। उस काव्य रचना को तो शैलेंद्र जी गर्हित ही मानते हैं जो समाज में मिथ्या अंधविश्वास, जर्जर रूढ़ियों, आत्मघाती कुरीतियों तथा शोषणकारी प्रथाओं को जीवित बनाए रखने के लिए जाने या अनजाने में लिखा जाता है।

लेखक ने यह भी दर्शाया है कि हिन्दी साहित्य में आरंभ से ही लोक मंगल के लिए काव्य लेखन की परंपरा रही है। संतों, भक्तों तथा अनेकों सूक्तिकार कवियों के माध्यम से ऐसी कविता सामने आती रही है जिन्होंने लोक या जनपक्ष का हित साधने के लिए पीड़ादायक कुप्रथाओं एवं मनोवृतिओं को हटाकर मंगलकारी भावों को जनमानस में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। कबीर, तुलसी, रहीम आदि अनेक मध्यकालीन कवियों को उन्होंने अपनी पुस्तक में सम्मानपूर्वक याद किया है। पूर्व में हिंदी काव्य समीक्षकों ने भी साहित्य की परिभाषा में हित तत्व को सदा ही महत्व दिया है, किंतु बाद में समय के साथ इस शब्द का अर्थ खोया हुआ सा लगता है। यह अकारण नहीं है कि शैलेंद्र जी ने यहाँ जनहित के स्थान पर जनपक्ष शब्द प्रयुक्त किया है और इसे काव्य लेखन की कसौटी माना है। इस पुस्तक में दिए गए के सभी निबंधों और आलेखों से यह निष्कर्ष निकलता है कि श्रेष्ठ काव्य रचना करने के लिए जनपक्षधर तत्वों का समाहार सशक्त रूप में होना अनिवार्य है अन्यथा कविता अपनी अर्थवत्ता और सार्थकता खो देगी। लेखक ने पुस्तक में अनेक कवियों की उन रचनाओं को प्रस्तुत किया है जिन्होंने लोकमंगल को प्रमुखता देकर कविता को न केवल रुचिकर बनाया है वरन उसे लोकहित से समृद्ध किया है। मुक्तिबोध, बाबा नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, शील जी, शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विजेन्द्र, केदारनाथ सिंह, शंभूनाथ सिंह, महेंद्र नेह, शलभ श्रीराम सिंह, विनय दुबे, कुमार अंबुज, भवगत रावत, नरेंद्र जैन आदि की चर्चा लेखक ने की है। इन कवियों ने धन या प्रसिद्धि, पुरस्कार या मंच पर प्रतिष्ठा पाने के लिए जनहित की उपेक्षा नहीं की। इन्होंने अपनी रचनाओं में माध्यम से जनरूचियों का परिष्कार करते हुए शोषण की जंजीरें तोड़ने की भावात्मक ऊर्जा प्रदान की।

लेखक न उन कवियों के योगदान और रचना कर्म पर भी आलोचनात्मक नजर डाली है जिन्होंने अपने अभिजात संस्कार या सुख–सुविधाओं के लोभ–लालच वश अपनी कलात्मक प्रतिभा का दुरुपयोग किया। इन रचनाकारों ने जनपक्षधरता के बजाय शोषक वर्ग के अनुरूप यथास्थिति बनाए रखने या उनके मनोरंजन हेतु काव्य रचना प्रस्तुत की। शैलेंद्र, प्रयोगवादी कवियों, 'नई कविता'–वादियों, अकविता और इस शमशानी पीढ़ी के रचनाकारों को इसलिए अनुकरणीय नहीं मानते क्योंकि इनकी कविताएँ भले ही शिल्प समृद्धि का चमत्कार दिखाएँ लेकिन वे जनहित के बजाय शोषक वर्ग का हित साधन करती हैं। अज्ञेय मंडली के कवियों से लेखक को यही शिकायत रही है कि उनकी प्रतिभा एवं शिल्प सामर्थ्य व्यक्तिवादी, भाववादी दर्शन से संपृक्त है और जनपक्ष के बजाय जनविरोध में खड़ी होकर शीर्षक वर्ग की हित रक्षा का कार्य प्रशस्त करती हैं।

इस पुस्तक में शैलेंद्र जी ने ऐतिहासिक तथ्यों पर भी प्रकाश डाला है कि जब प्रगतिवादी काव्य आंदोलन के परिणामस्वरूप हिंदी में जनपक्ष को प्रमुखता देने वाली काव्य प्रवृत्तियाँ बढ़ रही थीं तो उपनिवेशवादी–पूंजीवादी लोकतंत्र की शक्तियों ने जन–संसाधनों, अकादमियों, मनोरंजन संचार माध्यमों, पुरस्कारों, सम्मानों, संस्थाओं आदि के माध्यम से रचनाकारों का ऐसा गुट तैयार किया जिसने जनपक्षधर प्रगतिवादी–जनवादी काव्य–आंदोलन को अवरूद्ध करने की कोशिश की। इसके नेता अज्ञेय और धर्मवीर भारती थे। इस गुट ने ऐसे ही कवियों की पत्रिकाओं एवं मंचों पर प्रतिष्ठा दी जो इनके खेमे में आ गए बाकी प्रगतिवादी, प्रतिभाएँ उपेक्षित, अपमानित और कुंठित होती रही या परेशानी झेलती रहीं। निराला, मुक्तिबोध, त्रिलोचन आदि अनेक नाम लेखक ने गिनाए हैं जिन्हें हतोत्साहित करने का कार्य अभिजात संस्कृति के पैरोकार बुद्धिजीवियों तथा रचनाकर्मियों शैलेंद्र चौहान ने इस पुस्तक में कविता के जनपक्ष का आंतरिक पक्ष दूसरा जनपक्ष का शिल्प पक्ष। जनपक्ष के आंतरिक पक्ष में उन्होंने बताया है कि जनपक्ष का अर्थ रचना के कंटेंट में पीड़ितों के प्रति हमदर्दी या ऊपरी सदाशयता नहीं है बल्कि कविता के जनपक्ष में आम जनता के दुख–दर्द के यथार्थ कारणों को समझने के लिए सामाजिक विकास के वैज्ञानिक नियमों की जानकारी आवश्यक है। इन नियमों को पद्य–रूप में प्रस्तुत करना भी कविता का जनपक्ष नहीं है वरन इन नियमों के आलोक में उत्पीड़न के कारणों को मिटाने की संवेगात्मक ऊर्जा उत्पन्न करना सच्चे मायने में कविता की आंतरिक जनपक्षधरता है। ऐसी प्रौढ़ संवेगात्मकता तभी उत्पन्न की जा सकती है जब रचनाकार शिल्पविधि मैं जनपक्ष पर ध्यान दें। लेखक ने आलोक धन्वा की कविताओं का विश्लेषण कर यह भली–भांति दर्शाया है कि आलोक की कविताओं का कंटेंट तो जनपक्ष से संपन्न है। वह पीड़ित बहुसंख्यक के दर्द को समाप्त करने की मंशा से प्रेरित है लेकिन भाषा शिल्प इस प्रकार का लाया गया है कि कविता आमजन की समझ से परे हो जाती है। शैलेंद्र जी यह स्थापित करते हैं कि जनपक्षधर कंटेंट को लेकर चलने वाले कवि को कथ्य, भाषा, शिल्प, कहन जैसे उपकरणों में जनपक्षधरता को नहीं भूलना चाहिए। कवि नागार्जुन, केदारनाथ

अग्रवाल की कविताओं तथा ऐसे ही अनेक जनवादी–प्रगतिवादी रचनाकारों की कविता में कंटेंट के स्तर पर तथा शिल्प विधियों के स्तर पर इस ओर पूरा ध्यान दिया गया है। इसीलिए उनकी रचनाएँ तीव्र भावात्मक उत्तेजना के साथ चेतना के विवेक को बल देती हैं। इन कवियों का काव्य विषयवस्तु, वैज्ञानिक यथार्थवादी सोच के साथ–साथ तीव्र भाव उद्दीपनकारी शिल्प उपकरणों के समावेश के कारण ही अनुकरणीय बना है। इस पुस्तक को पढ़कर एक आश्वस्ति होती है कि साहित्य में आलोचना की लोकमंगलकारी परंपरा अभी जीवित है जिसे आचार्य शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामविलास शर्मा, नामवर जी आदि ने प्रतिष्ठित–पल्लवित किया था। यह पुस्तक रचनाकारों के साथ–साथ शोधार्थियों, साहित्य के गंभीर पाठकों और संभावनाशील आलोचकों के लिए भी प्रेरक एवं उपयोगी है

भूतपूर्व प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष हिन्दी गायत्री मंदिर के निकट,

पुस्तक–कविता का जनपक्ष, लेखक : शैलेंद्र चौहान, मूल्य : 249/–मात्र, प्रकाशन : मोनिका प्रकाशन, जयपुर

समीक्षा

आज के टूटते आदमी की आवाज

प्रो. प्रभुनारायण श्रीवास्तव

अरविन्द अवस्थी
मिर्जापुर (उ. प्रदेश)
मो– 9648388889

मिर्जापुर (उ. प्रदेश) के शहीद उद्यान में गत दो फरवरी को 'मिर्जापुर साहित्य संगम' संस्था की ओर से आयोजित साहित्यिक समारोह में वरिष्ठ कवि भोलानाथ कुशवाहा के सद्यः प्रकाशित कविता संग्रह 'वह समय था' का लोकार्पण हुआ। इस अवसर पर मुख्य अतिथि केबी पीजी कॉलेज, मिर्जापुर के हिंदी विभाग की अध्यक्ष एसोसिएट प्रोफेसर डॉ रेनूरानी सिंह ने लोकार्पित कृति पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि भोलानाथ कुशवाहा अपनी कविताओं में गहरी संवेदना के क्षणों से गुजरते हुए समय की विकृतियों के साथ संघर्ष करते दिखाई देते हैं। उनकी कविताओं में रिश्तों की टूटन और मानवीय संवेदना के क्षरण पर गहरी चिन्ता है। कवि सामाजिक समरसता और धार्मिक सहिष्णुता का पक्षधर है।

समारोह के अध्यक्ष केबी पीजी कॉलेज के अँग्रेजी विभाग के पूर्व अध्यक्ष, वरिष्ठ कवि प्रभुनारायण श्रीवास्तव ने कवि भोलानाथ कुशवाहा को यथार्थवादी रचनाकार बताते हुए कहा कि वह अपनी कविताओं में आज के त्रासदीपूर्ण जीवन और आम आदमी के समक्ष खड़ी चुनौतियों को उकेरकर रख देते हैं। उनकी कविताएँ आज के टूटते हुए आदमी की आवाज हैं।

विशिष्ट अतिथि वरिष्ठ साहित्यकार वृजदेव पांडेय ने कहा कि कविता संग्रह 'वह समय था' में कवि भोलानाथ कुशवाहा अतीत को लेकर गमगीन और सम्मोहित अवश्य हैं परन्तु मूलभूत से वह आज के लिए है, साथ ही भविष्य के लिए संभावनाएँ भी तलाशते हैं। वह अपनी कविताओं में व्यक्ति, परिवार, समाज, राजनीति के साथ धार्मिक असहिष्णुता पर भी प्रश्न खड़े करते हैं। उनकी कविताओं में केवल निराशा ही नहीं आशा और उम्मीद भी हैं।

कार्यक्रम का संचालन कर रहे समीक्षक एवं कवि अरविन्द अवस्थी ने अपने बीज वक्तव्य में लोकार्पित कविता संग्रह 'वह समय था' को वर्तमान के समक्ष खड़ा ऐसा प्रश्न बताया जिसका हल खोजना बहुत आवश्यक है। उन्होंने कहा कि इस कविता संग्रह की कविताएँ आने वाली पीढ़ी को मिलने वाले सामाजिक जीवन को लेकर चेतावनी हैं।

समारोह में वरिष्ठ शायर जफर मिर्जापुर एवं भोलानाथ कुशवाहा को 'निराला साहित्य सम्मान–2020' से सम्मानित किया गया। शायर मुहिब मिर्जापुरी ने सम्मानित शायर जफर मिर्जापुरी के लेखकीय व्यक्तित्व पर चर्चा पढ़ा और कहा कि वह एक मानिन्द शायर हैं। वह परम्परागत शायरी और मोहब्बती गजलों के फनकार के रूप में जाने–पहचाने जाते हैं। इस दौरान महिला कल्याण अधिकारी डॉ. मंजू यादव ने दोनों रचनाकारों की तारीफ की।

कार्यक्रम के दूसरे चरण में कवि सम्मेलन एवं मुशायर का आयोजन हुआ। इसमें भाग लेने वाले कवि थे। सर्व श्री प्रमोद कुमार सुमन, जफर मिर्जापुरी, मुहिब मिर्जापुरी, अरविन्द अवस्थी, शुभम श्रीवास्तव ओम, हसन जौनपुरी, आनन्द अमित, डॉ. अनुराधा ओस, डॉ. सुधा सिंह, नन्दिनी वर्मा, इरफान कुरैशी, कर्मराज यादव 'किसलय' इला जायसवाल, अखिलेश टंडन, केदारनाथ सविता, रवीन्द्र पांडेय, सुनील यादव, संतलाल सिंह, गोपाल कृष्ण द्विवेदी, जगदीश प्रसाद पांडेय, लालवत सिंह सुगम, दामाद मिर्जापुरी, हौसिला प्रसाद मिश्र, आशीष आदि।

प्रारम्भ में 'मिर्जापुर साहित्य संगम' संस्था के संरक्षक वरिष्ठ गीतकार प्रमोद कुमार सुमन ने आगत अतिथियों का स्वागत किया। अंत में शहीद उद्यान समिति मिर्जापुर के अध्यक्ष शिवलाल अवस्थी ने आभार व्यक्त किया।

I eh{kk

वर्तमान दशक में युवा पीढ़ी का कथा संसार

रमेश शर्मा
छत्तीसगढ़,
मो.– 9752685148

भारत हमेशा से गाँवों का देश रहा है, जहाँ की अस्सी प्रतिशत आबादी ग्रामीण लोक जीवन से सम्बद्ध रही है। प्रेमचन्द युगीन हिन्दी कहानियों पर जब हमारी नजर जाती है तो इसी ग्रामीण लोकजीवन की गहरी छाया वहाँ हम देख पाते हैं। आर्थिक उदारीकरण के उपरान्त समय के साथ सभ्यता और संस्कृति के उलट फेर ने जब एक नए बाजार को जन्म दिया तब उसका गहरा प्रभाव भारत के गाँवों की आबादी पर भी पड़ा और वे निपट शहरीकरण की चपेट में आने लगे। पूंजीवादी तंत्र और सत्ता ने मिलकर जब गाँवों को तहस–नहस करना शुरू किया तब गाँवों का स्वरूप बिगड़ने लगा। किसानों की जमीनें छीनी जाने लगीं और खेती की जगह पर कल कारखानों का कब्जा होने लगा। ज्यादातर गाँव, कस्बों और शहरों में विलीन होते चले गए और उनका अस्तित्व धीरे–धीरे एक तरह से खत्म सा होने लगा। हिन्दी कहानी पर भी उसका प्रभाव स्पष्ट दिखने लगा। नब्बे और उसके ठीक बाद के दशक की हिन्दी कहानियों को देखें, खासकर तत्कालीन युवा कहानी विशेषांकों को जो रवीन्द्र कालिया जी के संपादन में पाठकों तक आए, तो यह बात स्पष्ट तौर पर उभरकर सामने आती है कि हिन्दी कहानी से ग्रामीण लोक जीवन अदृश्य सा होने लगा। अगर वह कैलाश बनवासी जैसे कुछेक कहानीकारों की कहानियों में बचा भी रहा तो ऐसा नहीं लगा कि वह बचा रह गया है। उसकी जगह एकाएक, एक बजारू महानगरीय जीवन ने ले लिया। पर ईक्कीसवीं सदी के वर्तमान दशक की हिन्दी कहानियों को देखने–पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि हिन्दी कहानी का इतिहास फिर से अपने को दोहराने लगा है। ग्रामीण लोक जीवन का वह दौर धीरे–धीरे ही सही, पर फिर से अपने वजूद के साथ हिन्दी कहानी में लौटने लगा है। कुछ भी कहा जाए, गाँव इस देश की आत्मा में बसे हैं। उनकी प्रासंगिकता कभी खत्म नहीं होगी। कोरोना काल में हमने इसे घटते हुए भी देखा है। जब देश के तमाम कल कारखाने, दुकाने, मॉल्स इत्यादि बंद हो गए तब गाँव के किसानों की सब्जियों, अन्न सहित उनके अन्य कृषि उत्पादनों ने देश की अर्थ व्यवस्था को सहारा दिया। देश के सारे मजदूर गाँव की ओर लौटने लगे और गाँवों ने ही उन्हें पनाह दी।

इक्कीसवीं सदी के वर्तमान दशक की युवतम पीढ़ी में विगत पाँच–सात वर्षों में कहानी लेखन के क्षेत्र में जो नाम मेरी नजर में उभर कर आए हैं उनमें शेखर मल्लिक, संदीप मील, सत्यनारायण पटेल, नीरज वर्मा, सीमा शर्मा, श्रद्धा थवाईत, हुश्न तबस्सुम निहाँ, सरिता कुमारी, सिनीवाली शर्मा, इंदिरा दांगी, डॉ. परिधि शर्मा, रश्मि शर्मा, प्रज्ञा रोहिणी, भूमिका द्विवेदी अश्क, अमिता नीरव इत्यादि प्रमुख हैं। इस युवतम पीढ़ी के कथाकारों द्वारा लिखी गयी कुछ कहानियों पर चर्चा के माध्यम से इस निष्कर्ष पर पहुँचने में हमें आसानी होगी कि बाजारू भूमंडलीकरण और निपट शहरीकरण के इस दौर में भी क्या इनकी कहानियों में आज भी ग्रामीण जीवन या लोक जीवन की चिंताएँ शेष हैं?या फिर इस युवतम पीढ़ी के कहानीकारों की कहानियों में भी शहरीकरण से जन्मे महानगरीय जीवन की गहरी छाया है। इस क्रम में मैं ले रहा हूँ। इस कहानी में एक पात्र है बड़ा। बड़ा यानी बड़ी माँ। एक उम्रदराज विधवा ब्राह्मणी औरत जिसकी कोई संतान नहीं और वह अपने देवर देवरानी के परिवार के साथ रहती आई है। साथ रहते हुए भी एकदम अकेले, एक झोपड़ी में अलग–थलग रहती थीं। व्यवहार से थोड़ी कर्कश जिसे वे छुपाने की कोशिश भी नहीं करती थीं। उन्हें एक ही आदत थी कि वे चाय बहुत पीती थी। बिना दूध और ज्यादा चीनी वाली चाय। सुड़क–सुड़क कर पीते हुए देखना कहानी की सूत्रधार (लेखिका) को अच्छा लगता था।

एकदम लोक रंग में रचा–पगा था उनका जीवन।

सूत्रधार ने इस पात्र के बारे में एक जगह लिखा है–

बहुत कम कपड़े थे उनके पास। जो भी थे रंगहीन। विधवाओं के वस्त्र ऐसे ही हुआ करते हैं। गाँव में। पति की मृत्यु के साथ ही सारे रंग उनके जीवन से चले जाते हैं। यह कहना सही होगा कि जीवन ही चला जाता है। बस यादें रह जाती हैं। वह कपड़े पहने–पहने नहातीं। कुएँ के लड्ड कुंड से ठंडा पानी खींचकर निकालती और बाल्टी से वहीं खुद पर उड़ेलती जातीं। उन्हें देखकर मेरा भी मन होता कि ऐसे ही नहाऊं पर माँ ने नहाने नहीं दिया कभी वैसे।

बड़ा के पास बकरियाँ थी जिन्हें वह चराने जातीं। एक छोटी सी मगर मजबूत छड़ी उनके हाथ में मौजूद रहती। सुबह एक बार जंगल से लौट आने के बाद वह गाँव में बकरियाँ छोड़ देतीं और घर से लगे गोबर लिपे पिंडे पर बाहर बैठी रहती।

शायद यह उनका शौक था, शायद उनकी जरूरत या शायद मजबूरी। सूत्रधार (लेखिका) ने कई जगह इस पात्र को लेकर बड़ा दिलचस्प वर्णन किया है कि बड़ा जो है अपनी झोपड़ी में रखे दो चार बर्तन को बहुत रगड़–रगड़ कर मांजती। एकदम साफ चमकदार बर्तन।

बड़ा के पास कुएँ के अलग–बलग में बाड़ी थी जहाँ पुदीने के पत्ते उगते थे। साग–भाजी ऊगा करती थी। बड़ा के बाड़ी में सीताफल के पेड़ होते थे जहाँ पके फलों को देखकर सूत्रधार (लेखिका) और उसकी सहेली मनु का मन उन्हें खाने को होता था पर बड़ा से वे बहुत डरती थीं।

लेखिका ने एक जगह जिक्र किया है कि उसकी पसंद की चीजें बड़ा के कब्जे में थी और वह उन्हें बड़ा से नहीं ले पाती थी।

एकबार बड़ा ने लेखिका और उसकी सहेली को अपने पास बुलाकर बड़े प्रेम से कहा था कि क्या उन्हें शरीफा चाहिए?फिर बड़ा ने चुपके से कहा कि इसके बदले उन्हें चवन्नी देनी पड़ेगी। दोनों सहेलियाँ अपने घरों से चवन्नी लाकर शरीफा खरीद लेती थीं। बड़ा उन्हें कहती थी कि शरीफा को छुपा कर ले जाना। बड़ा ऐसा क्यों कहती थीं उन्हें उनदिनों समझ में नहीं आता था। यह काम वर्षों होता रहा जब तक बड़ा जिंदा रहीं। अपने बचपन में लेखिका और उसकी सहेली मनु अपने पड़ोस की बड़ा को इस तरह देखा करती थीं। उनके अनुभव बहुत निराले थे। बड़ा में लोक जीवन के सभी रंग, राग द्वेष, कर्कशता के पीछे प्रेम का छुपा हुआ रूप इत्यादि सब कुछ था जिसे दोनों सहेलियाँ महसूस करती हुई बड़ी हुई थी।

कहानी में एक जगह लेखिका लिखती हैं– बड़ा अकेली थी।

विधवा होने के बाद उनके देवर देवरानी ने उनकी जमीन की लालच में उन्हें आजीवन खाना कपड़ा देना स्वीकार किया था। एक कोने में पड़ी दो वक्त की रोटी निगल कर अपने मरने का इंतजार कर रही बड़ा को सिर्फ एक ही शौक था– चाय का। अपने उस शौक के लिए वे देवरानी या किसी अन्य के आगे हाथ नहीं फैलाना चाहती थी। छुपाकर बेचे गए शरीफे और अनाज से मिलने वाले वह कुछ पैसे ही उनके अपने थे जिससे वे चाय पत्ती और चीनी खरीदा करती थी।

फिर बड़ा इस दुनिया से चली गई। एक स्वाभिमानी पात्र बड़ा। दोनों सहेलियाँ भी बड़ी हो गई। बरसों बाद जब कहानी की सूत्रधार (लेखिका) गाँव के अपने घर में बैठी हुई थीं तो उसे बड़ा का घर याद आया, बड़ा बहुत याद आई, पर वहाँ सब कुछ बदल चुका था। ना बड़ा की वह बाड़ी बची थी ना वहाँ शरीफे से लदे हुए पेड़ बचे थे। उस जगह अब मोबाइल के टावर लग गए थे। उसके देवर देवरानी ने बड़ा का सब कुछ बेच दिया था। अब वे सारे दृश्य बदल गए थे। शरीफा खरीद कर खाने की वह जो चार आने की खुशी थी वह बड़ा के जाने के बाद अब कहीं गुम हो चुकी थी। यह कहानी मूल रूप में ग्रामीण लोक जीवन और वहाँ के बदलते समाज के बाजारू विमर्श की कहानी है।

परिकथा जनवरी–फरवरी 2018 अंक में छपी सीमा शर्मा की कहानी उसी पीपल के नीचे लोक जीवन में महिला शोषण की उस सच्चाई को सामने रखती है जो न केवल भयावह है बल्कि उसके साथ–साथ दिनोंदिन समाज के गर्त में जाने का संकेत भी है। इस कहानी को पढ़कर प्रेमचंद का युग याद आने लगता है। दाऊ साहेब, सुखबीर बाबू, पंडित और कालिया जो इस कहानी के सामंती और रसूखदार खल पात्र है ऐसे पात्रों की संख्या दिनोंदिन ग्रामीण समाज में बढ़ती जा रही है। राजनीति में डलुआ जैसे लोग इन पात्रों के लिए टूल्स की तरह है जिनके माध्यम से कजरी जैसी भोली–भाली स्त्रियों के शोषण के द्वार खुलते हैं। शोषण के रास्ते कजरी से होकर सत्तू जैसी भोली–भाली लड़कियों तक भी पहुँच चुके हैं। ये सामांती खल पात्र सत्तू जैसी छोटी–छोटी बच्चियों को भी नोचने में पीछे नहीं और जब कजरी जैसी स्त्रियाँ उसका प्रतिरोध करती है तो ये मिलकर संगठित षडयंत्र रचते हुए उन्हें ही कटघरे में ले आते हैं। अपराध तो वे ही करते हैं पर उनके द्वारा षडयंत्र पूर्वक कजरी जैसी स्त्रियाँ ही हत्यारिन और डायन साबित कर दी जाती है। सामाजिक न्याय व्यवस्था भी उनके विरुद्ध खड़ी हो जाती है और डलवा जैसा पात्र जो कजरी का पति है वह भी इस क्रूर न्याय व्यवस्था के दबाव में न चाह कर भी कजरी को सजा देने के लिए अभिशप्त है। उसकी आड़ में आज की सामाजिक व्यवस्था कजरी जैसी स्त्रियों का, न्याय के नाम पर लिंचिंग कर देती है। डलुवा तो बस एक टूल्स है जिसे विधायक बनने का सिर्फ सपना दिखाया जाता है और उस सपने के माध्यम से राजनीति अपना हवस मिटाती है। आज समाज का वह हिस्सा जो दमित है, शोषित है, उसे सपने दिखाने का काम आज की राजनीति कर रही है। और उसके मायाजाल में दमित वर्ग अपना अस्तित्व खो रहा है। कहानी में जिस तरह डलुवा अपनी पत्नी कजरी और बेटी सत्तू को खो देता है वह आज की राजनीतिक व्यवस्था में एक भयावह दृश्य है जो इस कहानी में दिखाई पड़ता है। सीमा शर्मा की ज्यादातर कहानियाँ लोक जीवन का ही प्रतिनिधित्व करती है, इसका उदाहरण दुनिया इन दिनों में प्रकाशित उनकी कहानी तीन का पहाड़ा और गटर है जिसमें एक दलित युवक की दारूण कथा को जगह मिली है, जो मैला ढोने के अपने परम्परागत काम से बाहर निकल कर पढ़ना लिखना चाहता है पर उसके आसपास की दुनिया और उसके आसपास मौजूद उच्च वर्ग का नजरिया सर्वथा इसके प्रतिकूल है। उनकी अन्य कहानियाँ भेड़ियों का पोषम्मा (कथादेश) चरित्र प्रमाण (कथाक्रम जनवरी–मार्च 2020), रोशनी (इन्द्रप्रस्थ भारती), चिलगोजे का तेल (परिकथा) इत्यादि यद्यपि स्त्री विमर्श की कहानियाँ है पर इनमें से ज्यादातर कहानियों में ग्रामीण लोक जीवन की उपस्थिति भी समानांतर रूप में शिद्दत से विद्यमान है। वर्तमान दशक के महत्त्वपूर्ण युवा कथाकार मनीश वैद्य के अब तक दो कहानी संग्रह टुकड़े–टुकड़े धूप और फुगाटी का जेता प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी कई कहानियों में ग्रामीण लोक जीवन की गूँज सुनाई पड़ती है। ग्रामीण जीवन में आए बदलाव के दर्द को प्रेम की स्मृतियों के माध्यम से अपनी कहानी खिरनी में बड़ी तरलता के साथ जिस तरह वे प्रस्तुत करते हैं वह पाठकों को द्रवित करता है। ग्राम्य जीवन और विगत के प्रति आस्था का भाव जिस तरह इस कहानी के सुन्दर संवादों में जीवंत होकर आता है वह हमें बांध लेता है।

28 वर्ष उम्र की डॉ. परिधि शर्मा की कहानियाँ...उम्मीद (परिकथा नवलेखन 2012), एक साधरण आदमी की मौत (समावर्तन फरवरी 2012) तोहफा (वागर्थ मार्च 2210) नीला आसमान (समावर्तन अक्टूबर 2011) इत्यादि में आम आदमी का दुःख दर्द शिद्दत से मौजूद है। यद्यपि उन्होंने भी कुछ कहानियाँ मसलन एक छूटती मेट्रो एक तस्वीर एक लड़की (परिकथा मार्च अप्रैल 2014) वजूद (भास्कर रसरंग 20 सितंबर 2009) महिला विमर्श जैसे विषयों को लेकर लिखी है, फिर भी उनकी कहानियों ने उस दायरे को दूर तक लांघा है। समावर्तन में प्रकाशित नीला आसमान कहानी की बात करें तो यह कहानी निपट शहरीकरण की चपेट में आए एक संवेदनशील ग्रामीण मनुष्य के आत्मरूदन की कहानी है जो अपने गाँव को, गाँव में छूट गए अपने परिवार को याद करते–करते अपना जीवन शहर में गुजारता है। जीवन–स्मृतियों के विविध रंगों के जरिये मार्मिक रूप में अपनी संवेदना और बचपन की वास्तविकताओं से गुम्फित घटनाओं के माध्यम से यह कहानी उस आत्मरूदन को जिस तरह बयाँ करती है, वह ध्यातव्य है। शहरीकरण और उद्योगों के चलते ग्रामीण किसानों की जीवन–स्थितियों में आ रही गिरावट की ओर भी यह कहानी हल्के से संकेत करती हुई आगे बढ़ती है। इस कहानी में रिश्तों को पुनः–पुनः टटोलने और उसे बचा लेने की एक मार्मिक अपील भी भीतर ही भीतर प्रतिध्वनित होती है।

इसी क्रम में युवा कथा लेखिका श्रद्धा थवाईत की कहानी हवा में फड़फड़ाती चिट्ठी की बात करें तो यह कहानी अभय और सरू जैसे नवदम्पतियों की ऐसी दुनिया से हमें जोड़ती है जो बनते–बनते अचानक कहीं खो जाती है। अभय और सरू की इस दुनिया में, उड़ान भारती आकांक्षाएँ, रोमानियत और निजी भावनाओं का एक शोर तो है पर यह शोर थोड़ा सुरीला है। ऐसी दुनिया कई बार इस धरती पर नक्सलवाद और गोली बारूद के आतंक की अतिवादिता से नष्ट होती रही है। नक्सल मोर्चे पर गए सैनिक अभय के शहीद हो जाने के उपरान्त अवशेष में बची उन जैसे युवाओं की लिखी चिट्ठियाँ सरू जैसी उनकी नवविवाहित पत्नियों के हाथों में बस फड़फड़ाती ही रह जाती है। उनके सारे सपने, सारी आकांक्षाएँ अचानक ध्वस्त हो जाती हैं। यह

कहानी प्रेम की धरती पर जन्मती है और अतिवादी हिंसा से उपजे उन सवालों के साथ खत्म होती है जिसके उत्तर खोजे जाने अभी शेष हैं। प्रेम के माध्यम से नक्सलवादी हिंसा की विभीषिका को सामने रखती यह कहानी वर्तमान में ग्रामीण लोक जीवन से जुड़ी एक विकराल समस्या को सामने रखती है जो छत्तसीगढ़ के बस्तर इलाके एवं उसके चारों तरफ पसरा हुआ है। नया ज्ञानोदय कहानी विशेषांक अगस्त 2019 में प्रकाशित श्रद्धा की कहानी बसेरा छत्तीसगढ़ के बस्तर के ग्रामीण क्षेत्रों में हथियों की समस्या से जूझ रहे आदिवासियों की भीषण समस्या को पूरे मर्म और संवेदना के साथ प्रस्तुत करते हुए पाठकों को लोक जीवन के करीब ले जाती है।

सिनीवाली शर्मा उन युवा महिला कथाकारों में से हैं जिनकी सभी कहानियाँ ग्रामीण पृष्ठभूमि पर ही बुनी गयी है। गाँव के लोक जीवन में महिलाओं से जुड़ी समस्याओं के आलाव वे अन्य ज्वलंत विषयों को इस तरह उठाते हैं कि लोक जीवन की त्रासदियाँ फिल्म के दृश्यों की तरह चलने लगती है। परिकथा नवलेखन अंक में प्रकाशित उनकी कहानी हंस अकेला रोया विपिन नामक एक ऐसे किसान की कहानी है जिसके शिक्षक पिता की लम्बी बीमारी उपरान्त मृत्यु हो चुकी है। लोगों की नजर में बाहर से संपन्न दिखता विपिन का यह परिवार पिता की लम्बी बीमारी के चलते आर्थिक परेशानी में आ चुका है पर पिता के क्रिया कर्म में कर्मकांडी लोग उनका भावनात्मक शोषण करके उन्हें इस तरह लूटने पर आमादा हैं कि विपिन की हालत उस हंस की तरह हो गयी है जो अकेले रोने को अभिशप्त है। समाज के असल चरित्र को उजागर करती यह कहानी पाठकों के सामने एक बड़ा सवाल उठाती है। सिनीवाली की उस पार, महादान एवं नियति जैसी कहानियाँ यद्यपि महिला विमर्श पर केन्द्रित हैं पर उन्होंने कहानी के कंटेंट के दायरों को व्यापक ही किया है।

शेखर मल्लिक वर्तमान दशक में युवतम पीढ़ी के प्रतिभा संपन्न कथाकार हैं। उनके दो कहानी–संग्रह और एक उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। लोक जीवन उनकी कहानियों में सघनता के साथ आता है। परिकथा (मार्च अप्रैल 2011 युवा कहानी–3) में प्रकाशित उनकी कहानी डायनमारी पढ़कर इस बात से पूरी तरह आश्वस्त हुआ जा सकता है कि हिन्दी कहानी का असली मुकाम ग्रामीण लोक जीवन की कथा गाथा के बिना आज भी अधूरा है। डीह (गाँव) के संथाली लोक जीवन की सामाजिक बुराईयों को उघाड़ती यह कथा वहाँ की सामन्ती पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था पर न केवल चोंट करती है बल्कि महिलाओं की दारूण स्थिति का भी चित्रण करती है। मोगा जैसे शराबी और अकर्मण्य पुरुष की पत्नी गुनिया की चिंता यह है कि किसी तरह बारिश के मौसम में खेतों की जुताई हो जाय तो खेती से साल भर का खर्च निकल सके। वह कई बार पति मोगा से विनती भी करती है कि वह इस काम को करे, पर मोगा जैसा शराबी आदमी जिसे शराब में पैसे उड़ाने और नेशे में धुत्त पड़े रहने से फुर्सत नहीं है वह भला ऐसा क्यों करें, इसलिए गुस्से में गुनिया को वह लातों से मारता है। अंततः अपने बच्चों के भूख की चिंता में डूबी उनकी माँ गुनिया एक दिन भोर होने से पहले बूढ़े बैल को लेकर खेतों में हल चलाती है और वहाँ के संथाली समाज की नजर में यह उसका सबसे बड़ा अपराध हो जाता है, कि उसने औरत होकर खेतों में हल चलाया जो कि उस समाज में पूरी तरह वर्जित है। डीह में यह कहकर उसकी प्रताड़ना का दौर शुरू होता है कि औरत के हल चलाने से देवी माँ अप्रसन्न हो जाएगी और पूरा गाँव उसकी सजा भुगतेगा। वह सबकी नजर में डायन ठहरा दी जाती है। पूरा गाँव तमाशबीन हो जाता है। सजा के बतौर गुनिया को एक बैल के साथ हल में बांधकर खेंतों की जुताई होने लगती है। लोग उसे कोड़े मारते हैं। पेड़ से बाँध देते हैं। फिर मुर्गा भात के लिए मोगा को बुलाकर जुर्माना लगाया जाता है। प्रधान और बैगा जैसे पात्र इस कहानी में जिस तरह अत्यंत क्रूर पात्र की तरह उभरते हैं उसे देख, पढ़ कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। डीह के ग्रामीण समाज का अंधविश्वास और उसकी काली सच्चाईयों को उभारती यह कहानी यह बताती है कि डायन होने का आरोप लगाकर औरत को किस तरह आज भी प्रताड़ित किया जाता है।

इसी क्रम में संदीप मील युवा पीढ़ी के उन गिने–चुने कथाकारों में से हैं जिन की कहानियाँ ग्रामीण परिवेश के रचाव में मुखर हैं और वहाँ की घटनाओं को अपने सही स्वरूप में सामने लाने की दिशा में एक संवाहक की भूमिका में खरी उतरती है। परिकथा में प्रकाशित उनकी एक कहानी किश्तों की मौत की चर्चा मैं यहाँ करना चाहूँगा। यह कहानी भी गाँव के पिरवेश पर बुनी गई है, पर यह ग्रामीण परिवेश बाजार और शहरीकरण के प्रभाव के चलते रिश्तों के धरातल पर एक भुरभुरी जमीन में तब्दील होता जा रहा है। उसी तब्दीली को संदीप अपनी इस कहानी में उठाते हैं। समाज में स्त्री के प्रति उपेक्षा का जो अमूर्तन भाव है, वह कितना भयावह है, उस भयावह अमूर्तन भाव को संतीप ने मूर्ति के बरक्स अपनी कहानी में दिखाने की जो कोशिश की है वह उल्लेखनीय है। मूर्ति जो मृत्यु का प्रतीक है और अपनी ही मृत्यु के इस प्रतीक को देख–देख कर मृत्यु की प्रतीक्षा करना सचमुच बहुत पीड़ादायक है।

इन्सान खुद नहीं मरता, दूसरे लोग मार देते हैं।

दरअसल ये दूसरे लोग कौन हैं?क्या यह दूसरा, उचित नामक पात्र है जो दृश्य को अपनी आँखों से देख रहा है और देख कर उसे तकलीफ हो रही है। जाकर रूकमा को वह छू भी रहा है और छूते ही वह गिर कर मर जा रही है। या ये दूसरे लोग उस रूकमा के बेटे हैं जो किस्तों में उसे जीते जी मार रहे हैं, पर उनकी नजर में आरोपी वह उचित है जो संवेदना की धरती पर अब भी काबिज है।

दरअसल इन दूसरे लोगों की यह पहचान ही अमूर्तन है और उस अमूर्तन को यह कहानी रचती है। पर अब भी वह अमूर्तन न्याय की नजर से कभी देखी नहीं जाती वह भी ऐसे समाज में जो आस्था रूपी अमूर्तन पर विश्वास करता है और अमूर्तन को कई बार न्याय की नजर से भी देखे जाने की कोशिश हुई है। यह कहानी ग्रामीण समाज में व्याप्त कुछ ऐसी ही बुराईयों, चालबाजियों पर सवाल उठाती है।

ग्रामीण लोकजीवन को अपनी कहानियों में रचकर जिन युवा कहानीकारों ने प्रेमचन्द युगीन कहानी आंदोलन की ईक्कीसवीं सदी के वर्तमान दशक में भी गति दी है, उनमें सत्यनारायण पटेल एक अग्रणी नाम है। उनके दो कहानी संग्रह काफिर बिजूका उर्फ इब्लीस और तीतर फांद चर्चा में रहे हैं। उनका एक उपन्यास गाँव भीतर गाँव भी ग्रामीण लोक जीवन पर बुना गया प्रभावी उपन्यास है। सत्यनारायण की कहानियों में लोककथा के तत्व अपने सघन रूप में विद्यमान है। लोकजीवन में आसपास के नदी, पहाड़ पशु, पक्षी भी शामिल है। नृशंस शहरीकरण से उपजे स्त्री–पुरुष की उत्तर आधुनिक समस्याओं को

चिका और चिकी पक्षियों के माध्यम से काफिर बिजूका उर्फ इब्लीस संग्रह में संगृहीत कहानी 'एक था चिका एक थी चिकी' में चित्रित किया गया है। कथा नायिका अपनी भगिनी और भतीजे को चिका और चिकी पक्षियों की कहानी सुनाती है और अंत में वह खुद चिकी पक्षी एक जगह बंधक हो जाने के दर्द से अपने दर्द को जोड़कर महसूस करा पाने में कामयाब हो जाती है। एक जगह बंद कमरे में औरत के बंधक जाने की यह व्यथा–कथा पाठकों तक बखूबी इस्तेमाल कर पाने में कामयाब हुए हैं। आज विकास की अवधारणा को महानगरों में चमचमाती सड़कों, पुल–पुलियों और वहाँ की चकाचौंध से अंतर्संबंधित कर दिया गया है, जबकि गाँव के गाँव आज भी सड़क, पुलिया, बिजली जैसी बुनियादी आवश्यकताओं से वंचित हैं। सत्यनारायण पटेल के इसी संग्रह में संग्रहित कहानी ''घट्टी वाली माई की पुलिया'' में घट्टी वाली माई इस अव्यवस्था के दंश को भोगी हुई वह लोक नायिका है जो बाढ़ के दिनों में नदी पर पुल न होने की वजह से अपने पति, जिसको सांप ने डस लिया है, को इलाज के लिए गाँव के बाहर नहीं ले जा सकती और उसे खो देती है। सत्ता के बहरेपन से उपजी बुनियादी आवश्यकताओं का अभाव लोकजीवन को कई बार त्रासद स्थितियों में पहुँचा देता है, किसी को खो देने जैसी यही त्रासदपूर्ण घटना कई बार घट्टी वाली माई जैसे लोकजीवन के पात्रों के भीतर प्रेम को नये रूप में सृजित कर देती है और यह प्रेम लोकजीवन की अपनी सांगठनिक ताकत बन जाती है जो उनसे खुद ब खुद ऐसा काम करवा लेती है जिसे सत्ता प्रतिष्ठान हमेशा उपेक्षित करते आए हैं। घट्टी वाली माई द्वारा निर्मित पुलिया लोकजीवन की उसी ताकत की मिशाल है जो सत्ता को कई बार आईना दिखाने का काम भी करती है जिसे सत्यनारायण अपनी कहानी में संजीदगी से रच पाने में कामयाब हुए हैं।

युवा पीढ़ी के कथाकारों में हुश्न तबस्सुम निहाँ भी वर्तमान दशक में एक उभरता हुआ नाम है जिनकी कहानियों में गाँव का लोक जीवन दृश्यमान है। उनके दो कहानी संग्रह नीले पंखों वाली लड़कियाँ और नर्गिस फिर नहीं आएगी प्रकाशित हुए हैं। परिकथा जनवरी–फरवरी 2019 में प्रकाशित उनकी कहानी परीक्षा ग्रामीण परिवेश से जुड़ी नय्या नामक उस लड़की की कहानी है जिसे किशोरावस्था में मासिक धर्म की अनभिज्ञता के कारण गलतफहमियों के चलते विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। वह हिजड़ी के रूप में स्कूली जीवन से ही गाँव में नाहक ही बदनाम हो जाती है और स्कूल छोड़ देती है। उसका ब्याह तय होता है फिर बाद में उसके ससुराल वाले उसके हिजड़ी होने की खबर सुनकर आपत्ति उठाते हैं। फिर किसी तरह उसके मासिक धर्म की परीक्षा उसके ससुराल से आये महिलाओं द्वारा की जाती है। इस परीक्षा में तो वह पास हो जाती है पर यह परीक्षा उसके लिए यातना से कम नहीं होती। ग्रामीण समाज में इस तरह की भ्रांतियाँ, अफवाहें आज भी विद्यमान हैं जिसे इस कहानी में चित्रित किया गया है।

नीरज वर्मा, दिव्या विजय, प्रज्ञा रोहिणी, सरिता कुमारी, इंदिरा दांगी, अमिता नीरव और भूमिका द्विवेदी अश्क भी वर्तमान दशक के प्रतिभा संपन्न युवा कथाकार हैं। उनकी कहानियों में यद्यपि ग्रामीण जनजीवन के चित्र दृश्यमान नहीं हैं पर उसके बावजूद इनमें से ज्यादातर रचनाकारों की कहानियों में आम जनजीवन से जुड़े सर्वहारा पात्रों की उपस्थिति हमें आश्वस्त करती है। लोक जीवन किसी न किसी रूप में इनकी कहानियों में आता है। नीरज वर्मा की कहानी पत्थर, प्रज्ञा रोहिणी की कहानी ''फ्रेम'' और ''सीताओं की देहरी'' में लोक जीवन से जुड़े पात्रों का दर्द हम महसूस कर सकते हैं।

दिव्या विजय की एक कहानी यारेगार जो नया ज्ञानोदय के कहानी विशेषांक अगस्त 2019 में आयी थी यह कहानी पूरी तरह लोकजीवन पर केन्द्रित है। एक बर्बर शासन के साए में लोग भयग्रस्त होकर जीने को अभिशप्त हैं जहाँ बच्चों के पतंग उड़ाने जैसी बालसुलभ गतिविधियों पर भी पूरी तरह बंदिश है और पकड़े जाने पर मृत्यु तक की सजा मुकर्रर है।

युवा लेखिका सरिता कुमारी की कहानियाँ भी आम जनजीवन से रची–पगी हैं। नया ज्ञानोदय कहानी विशेषांक अगस्त 2019 में प्रकाशित उनकी एक कहानी जमीर की चर्चा मैं यहाँ करना चाहूँगा। यह कहानी आरिफ नामक एक ऐसे पात्र पर बुनी गयी है जो राजस्थान के रेगिस्तानी टूरिस्ट इलाकों में पर्यटकों को ऊँट की सवारी कराता है। कम पढ़ा लिखा यह आरिफ अपने व्यवहार और बातचीत से हंसमुख और पढ़ा लिया लगता है। उसे जीवन का वह व्यावहारिक अनुभव हासिल है जो आमतौर पर स्कूल या महाविद्यालयों से प्राप्त नहीं हो पाता। वह अपने जीवन में सीमित संसाधनों के बावजूद संतुष्ट है क्योंकि उसे इस बात का इल्म है कि व्यक्ति कितना भी धन अर्जित कर ले उसे जीवन में हर समय संशाधनों की कमी महसूस होती है। इसे लेकर उसका नजरिया इतना स्पष्ट है कि वह अपने टूरिस्ट से अलग से बख्शीश नहीं माँगता न ही देने पर कभी लेता है। उसका जमीर इस बात के लिए गवाही नहीं देता कि वह ऐसा गलत कदम उठाए। अंत में जब उसके दो महिला टूरिस्ट उसकी बच्ची के बर्थ डे के नाम पर बख्शीश में एक हजार रुपये यह जानते हुए भी कि वह नहीं लेगा, आग्रह पूर्वक खुश होकर उसे देने का प्रयास करते हैं तो वह बड़ी विनम्रता से यह कहकर टाल देता है कि अगर आपको देना ही है तो कल घर आकर उसी के हाथों में दीजिए। वह ऐसा इसलिए कहता है क्योंकि बातचीत के दौरान उसे पता रहता है कि ये महिला टूरिस्ट कल तक यहाँ रूकेंगी नहीं। आरिफ इस कहानी का इतना कल्वर्ड पात्र है कि वह अपने टूरिस्टों का दिल दुखाना भी नहीं चाहता, इसलिए चालाकी से वह उनसे पूछता है...मेडम क्या आपके पास टॉफियाँ होंगी?टूरिस्ट जब खुशी–खुशी टाँफियाँ निकालती है तो उनमें से यह कहकर वह एक टॉफी रख लेता है कि यह उसकी बेटी के लिए बर्थ डे गिफ्ट है। उसके इस व्यवहार से महिला टूरिस्ट चकित होकर रह जाती है और वे अपने स्वयं के जीवन की कमियों की ओर झाँकने से भी नहीं बच पातीं।

ईक्कीसवीं सदी के वर्तमान दशक में उभरे इन युवा कथाकारों की कहानियों पर चर्चा के उपरान्त यह बात आश्वस्त होकर कही जा सकती है कि कहानी धीरे–धीरे फिर से गाँवों की ओर, लोकजीवन की ओर लौट रही है और कहानी का इतिहास अपने को दोहराने की शुरुआत कर चुका है।

पता– 92 श्रीकुंज, बोईरदादर, रायगढ़ (छत्तीसगढ़) पिन–496001 मो. 9752685148 email: rameshbaba.20102@gmail.com

आलेख

नारी की महिमा और वेदों में नारी का स्थान

डॉ. विदुषी शर्मा
रिषिनगर, रानीबाग दिल्ली
मो– 9811702001

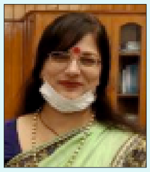

जब से सृष्टि की रचना हुई है, तब से ही शायद हम नारी को सशक्त करने की बात सोच रहे हैं। वह शायद इसलिए क्योंकि प्रकृति ने नारी को कोमल, ममतामयी, करूणामयी, सहनशील आदि गुणों से भरपूर बनाया है। तब से लेकर आज तक हम नारी को हर रूप में सशक्त करने की बात सोच रहे हैं। और आज तक नारी कितनी सशक्त हुई है, कितनी सबल हो चुकी है, यह हम सब जानते हैं। यह सब बातें प्रमाणिक है और इन सब का हमारे जीवन पर अत्यधिक प्रभाव भी पड़ता है, पड़ता जा रहा है।

परन्तु इन सबसे हटकर मैं आज नारी सशक्तिकरण के दूसरे पहलू पर अपका ध्यानाकर्षित करना चाहती हूँ। नारी तो प्रारंभ से ही सशक्त है। इसका प्रमाण तो पग–पग पर मिलता है। यह क्या प्रमाण है, इन सबको बताने से पहले मैं यहाँ यह स्पष्ट करना चाहती हूँ कि नारी को यह महसूस क्यों हुआ कि उसे सशक्त होना है, होना पड़ेगा, और होना ही चाहिए। वो इसलिए कि हमारे समाज में कई लोग उसकी क्षमता को पहचान नहीं पाए, जान नहीं पाए, और जान पाए तो, मान नहीं पाए, या मानना ही नहीं चाहते हैं कि नारी हर हर क्षेत्र में, हर काम में, बेतर हो सकती है। इसलिए अपने आप को प्रमाणित करने के लिए, अपने अस्तित्व के अनेकों रूपों को दिखाने के लिए ही उसे सशक्त बनाने की आवश्यकता पड़ी (पर सच तो ये है कि सशक्त तो वह है ही।)

अब हम सशक्तिकरण की बात करते हैं, तो सबसे पहले हम सब अपने अस्तित्व, अपने वजूद की बात करें तो हमें बनाने वाली कौन?एक नारी। सृजन शक्ति ईश्वर ने पृथ्वी और नारी को ही प्रदान की है (हालाँकि उसमें बीज तत्व की महिमा को, उसकी आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता) इसके परिप्रेक्ष में स्वरचित कविता की दो पंक्तियां कहना चाहूँगी कि......।

''माँ है तो श्री है, आधार है,
क्योंकि प्रकृति, धरती एक माँ का ही तो प्रकार है।
माँ वो हैं जो खुद मिट कर, औरों को बनाती है, क्योंकि पत्थर
पर पिस कर ही, हिना रंग लाती है।
माँ और माटी का सदियों पुराना नाता है,
चाह कर भी भला, इन दोनों की हस्ती को कौन मिटा पाता है,
एक जननी है, तो दूसरी मातृभूमि भारत माता है।''

हमारे वजूद को जिसने बनाया, निर्मित किया वो एक नारी है और हमारी धरती माँ, एक नारी का ही रूप है जिसकी बदौलत हम अपने इस वजूद को सुरक्षित रख पा रहे हैं। और हम सब भारत माँ की संतान हैं। यह हमारी खुशनसीबी है। यहाँ भी माता की आवश्यकता एवं महत्ता दर्शनीय है। नारी हर रूप में एक शक्ति है। वह पुरुष को जन्म देती है, उसका पालन करती है (एक माँ के रूप में) आजीवन उसका साथ देती है (एक पत्नी के रूप में) जिम्मेदार बनाती है, सोचने का नजरिया बदलती है, (एक बेटी के रूप में) और जीवन को आलंबन देती है (पुत्रवधू के रूप में)।

यानि जीवन के हर पड़ाव में, हर रिश्ते में वह सशक्त है। यहाँ सशक्तिकरण भावनात्मक स्तर का है क्योंकि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय सशक्तिकरण की बातें तो सभी कर रहे हैं, और इन सबके बारे में सभी जानते भी हैं। परन्तु हम कवि लोग भावनात्मक स्तर पर रहते हैं, और हर बात का संबंध ईश्वर से, आस्तिकता से करते हैं, क्योंकि – ''जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि, वेदों में नारी का सम्मान।''

वेद नारी को अत्यंत महत्वपूर्ण, गरिमामय, उच्च स्थान प्रदान करते हैं। वेदों में स्त्रियों की शिक्षा–दीक्षा, शील, गुण, कर्तव्य, अधिकार और सामाजिक भूमिका का जो सुन्दर वर्णन पाया जाता है, वैसा संसार के अन्य किसी धर्मग्रंथ में नहीं है। वेद उन्हें घर की सम्राज्ञी कहते हैं और देश की शासक, पृथ्वी की सम्राज्ञी तक बनने का अधिकार देते हैं।

वेदों में स्त्री यज्ञीय है अर्थात् यज्ञ समान पूजनीय वेदों में नारी को ज्ञान देने वाली, सुख–समृद्धि लाने वाली, विशेष तेज वाली, देवी, विदुषी, सरस्वती, इन्द्राणी, उषा– (जो सबको जगाती है) इत्यादि अनेक आदर सूचक नाम दिए गए हैं।

वेदों में स्त्रियों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है– उसे सदा विजयिनी कहा गया है और उन के हर काम में सहयोग और प्रोत्साहन की बात कही गई है। वैदिक काल में नारी अध्यन–अध्यापन से लेकर रणक्षेत्र में भी जाती थी। जैसे कैकयी महाराज दशरथ के साथ युद्ध में गई थी। कन्या को अपना पति स्वयं चुनने का अधिकार देकर वेद पुरुष से एक कदम आगे ही रखते हैं।

अनेक ऋषिकाएँ वेद मंत्रों की द्रष्टा हैं– अपाला, घोषा, सरस्वती, सर्पराज्ञी, सूर्या, सावित्री, सूर्या, सावित्री, अदिति– दाक्षायनी, लोपामुद्रा, विश्ववारा, आत्रेयी आदि।

तथापि, जिन्होंने वेदों के दर्शन भी नहीं किए, ऐसे कुछ रीढ़ की हड्डी विहीन बुद्धिवादियों ने इस देश की सभ्यता, संस्कृति को नष्ट–भ्रष्ट करने का जो अभियान चला रखा है– उसके तहत वेदों में नारी की अवमानना का ढ़ोल पीटते रहते हैं।

आइए, वेदों में नारी के स्वरूप की झलक इन मंत्रों में देखें–

अथर्ववेद 11.5.18

ब्रह्मचर्य सूक्त के इस मंत्र में कन्याओं के लिए भी ब्रह्मचर्य और विद्या ग्रहण करने के बाद ही विवाह करने के लिए कहा गया है। यह सूक्त लड़कों के समान ही कन्याओं की शिक्षा को भी विशेष महत्त्व देता है।

कन्याएँ ब्रह्मचर्य के सेवन से पूर्ण विदुषी और युवती होकर ही विवाह करें।

अथर्ववेद 14.1.6

माता–पिता अपनी कन्या को पति के घर जाते समय बुद्धिमत्ता और विद्याबल का उपहार दें। वे उसे ज्ञान का दहेज दें। जब कन्याएँ बाहरी उपकरणों को छोड़ कर, भीतरी विद्या बल से चैतन्य स्वभाव और पदार्थ को दिव्य दृष्टि से देखने वाली और आकाश

और भूमि से सुवर्ण आदि प्राप्त करने–कराने वाली हो तब सुयोग्य पति से विवाह करें।
अथर्ववेद 14.1.20
हे पत्नी! हमें ज्ञान का उपदेश कर।
वधू अपनी विद्वत्ता और शुभ गुणों से पति के घर में सब को प्रसन्न करे दे।
अथर्ववेद 7.46.3
पति को संपत्ति कमाने के तरीके बता।
संतानों को पालने वाली, निश्चित ज्ञान वाली, सहत्रों स्तुति वाली और चारों ओर प्रभाव वाली स्त्री, तुम ऐश्वर्य पाती हो। हे सुयोग्य पति की पत्नी, अपने पति को संपत्ति के लिए आगे बढ़ाओं।
अथर्ववेद 7.47.1
हे स्त्री! तुम सभी कर्मों को जानती हो।
हे स्त्री! तुम हमें ऐश्वर्य और समृद्धि दो।
अथर्ववेद 7.47.2
तुम सब कुछ जानने वाली हमें धन–धान्य से समर्थ कर दो।
हे स्त्री! तुम हमारे धन और समृद्धि को बढ़ाओ।
अथर्ववेद 7.48.2
तुम हमें बुद्धि से धन दो।
विदुषी, सम्माननीय, विचारशील, प्रसन्नचित्त पत्नी संपत्ति की रक्षा और वृद्धि करती है और घर में सुख लाती है।
अथर्ववेद 14.1.64
हे स्त्री! तुम हमारे घर की प्रत्येक दिशा में ब्रह्म अर्थात् वैदिक ज्ञान का प्रयोग करो।
हे वधू! विद्वानों के घर में पहुँच कर कल्याणकारिणी और सुखदायिनी होकर तुम विराजमान हो।
अथर्ववेद 2.36.4
हे वधू! तुम ऐश्वर्य की नौका पर चढ़ो और अपने पति को जो कि तुमने स्वयं पसंद किया है, संसार–सागर के पार पहुँचा दो। हे वधू! ऐश्वर्य की अटूट नाव पर चढ़ और अपने पति को सफलता के तट पर ले चल।
अथर्ववेद 1.14.03
हे वर! यह वधू तुम्हारे कुल की रक्षा करने वाली है।
हे वर! यह कन्या तुम्हारे कुल की रक्षा करने वाली है। यह बहुत काल तक तुम्हारे घर में निवास करें और बुद्धिमत्ता के बीज बोये।
अथर्ववेद 2.36.3
यह वधू पति के घर जा कर रानी बने और वहाँ प्रकाशित हो।
अथर्ववेद 11.1.17
ये स्त्रियाँ शुद्ध, पवित्र और यज्ञीय (यज्ञ समान पूजनीय) हैं, ये प्रजा पशु और अन्न देतीं हैं।
यह स्त्रियाँ शुद्ध स्वभाव वाली, पवित्र आचरण वाली, पूजनीय, सेवा योग्य, शुभ चरित्र वाली और विद्वत्तापूर्ण हैं। यह समाज को प्रजा, पशु और सुख पहुँचाती हैं।
अथर्ववेद 12.1.25
वे मातृभूमि! कन्याओं में जो तेज होता है , वह हमें दो।
स्त्रियों में जो सेवनीय ऐश्वर्य और कांति है, हे भूमि! उस के साथ हमें भी मिला।
अथर्ववेद 12.2.31
स्त्रियाँ कभी दुख से रोयें नहीं, इन्हें निरोग रखा जाए और रत्न, आभूषण इत्यादि पहनने के दिए जाएँ।
अथर्ववेद 14.1.20
हे वधू! तुम पति के घर में जा कर गृहपत्नी और सब को वश में रखने वाली बनों।
अथर्ववेद 14.1.50
हे पत्नी! अपने सौभाग्य के लिए मैं तेरा हाथ पकड़ता हूँ।
अथर्ववेद 14.2.26
हे वधू! तुम कल्याण करने वाली हो और घरों को उद्देश्य तक पहुँचाने वाली हो।
अथर्ववेद 14.2.71
हे पत्नी! मैं ज्ञानवान हूँ तू भी ज्ञानवती है, मैं सामवेद हूँ तो तू ऋग्वेद है।
अथर्ववेद 14.2.74
यह वधू विराट अर्थात् चमकने वाली है, इसने सब को जीत लिया है।
यह वधू बड़े ऐश्वर्य वाली और पुरुषार्थिनी हो।
अथर्ववेद 7.38.4
सभी और समिति में जा कर स्त्रियाँ भाग लें और अपने विचार प्रकट करें।
ऋग्वेद 10.85.7
माता–पिता अपनी कन्या को पति के घर जाते समय बुद्धिमत्ता और विद्याबल उपहार में दे। माता–पिता को चाहिए कि वे अपनी कन्या को दहेज भी दें तो वह ज्ञान का दहेज हो।
ऋग्वेद 33.1.1
पुत्रों की ही भांति पुत्री भी अपने पिता की संपत्ति में समान रूप से उत्तराधिकारी है।
ऋग्वेद 10.1.59
एक गृहपत्नी प्रातः काल उठते ही अपने उद्‌गार में कहती है–
"यह सूर्य उदय हुआ है, इसके साथ ही मेरा सौभाग्य भी ऊँचा चढ़ निकला है। मैं अपने घर और समाज की ध्वजा हूँ, उस की मस्तक हूँ। मैं भारी व्याख्यात्री हूँ। मेरे पुत्र शत्रु–विजयी हैं। मेरी पुत्री संसार में चमकती है। मैं स्वयं दुश्मनों को जीतने वाली हूँ। मेरे पति का असीम यश है। मैंने वह त्याग किया है जिससे इन्द्र (सम्राट) विजय पता है। मुझे भी विजय मिली है। मैंने अपने शत्रु निःशेष कर दिए हैं।"
वह सूर्य ऊपर आ गया है और मेरा सौभाग्य भी ऊँचा हो गया है। मैं जानती हूँ, अपने प्रतिस्पर्धियों को जीतकर मैंने पति के प्रेम को फिर से पा लिया है।
मैं प्रतीक हूँ, मैं शिर हूँ, मैं सबसे प्रमुख हूँ और अब मैं कहती हूँ कि मेरी इच्छा के अनुसार ही मेरा पति आचारण करे। प्रतिस्पर्धी मेरा कोई नहीं है।
मेरे पुत्र मेरे शत्रुओं को नष्ट करने वाले हैं, मेरी पुत्री रानी है, मैं विजयशील हूँ। मेरे और मेरे पति के प्रेम की व्यापक प्रसिद्धि है।
ओ प्रबुद्ध। मैंने उस अर्घ्य को अर्पण किया है, जो सबसे अधिक उदाहरणीय है और इस तरह मैं सबसे अधिक प्रसिद्ध और सामर्थ्यवान हो गई हूँ। मैंने स्वयं को अपने प्रतिस्पर्धियों से मुक्त कर लिया है।
मैं प्रतिस्पर्धियों से मुक्त होकर, अब प्रतिस्पर्धियों की विध्वंसक हूँ और

विजेता हूँ। मैंने दूसरों का वैभव ऐसे हर लिया है जैसे की वह न टिक पाने वाले कमजोर बांध हों। मैंने मेरे प्रतिस्पर्धियों पर विजय प्राप्त कर ली है। जिसमें मैं इस नायक और उस की प्रजा पर यथेष्ट चला सकती हूँ।

इस मंत्र की ऋषिका और देवता दोनों ही शची हैं। शची इन्द्राणी है, शची स्वयं में राज्य की सम्राज्ञी है (जैसे कि कोई महिला प्रधानमंत्री या राष्ट्राध्यक्ष हो।) उसके पुत्र–पुत्री भी राज्य के लिए समर्पित हैं।

ऋग्वेद 1.164.41

ऐसे निर्मल मन वाली स्त्री जिसका मन एक पारदर्शी स्फटिक जैसे परिशुद्ध जल की तरह हो वह एक वेद, दो वेद या चार वेद के साथ ही छः वेदांगों–शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, ज्योतिष और छंद : को प्राप्त करे और इस वैविध्यपूर्ण ज्ञान को अन्यों को भी दे।

हे स्त्री पुरुषों! जो एक वेद का अभ्यास करने वाली वा दो वेद जिसने अभ्यास किए या चार वेदों की पढ़ने वाली या चार वेद और चार उपवेदों की शिक्षा से युक्त या चार वेद, चार उपवेद और व्याकरण आदि शिक्षा युक्त, अतिशय करके विद्याओं में प्रसिद्ध होती और असंख्यात अक्षरों वाली होती हुई सब से उत्तम, आकाश के समान व्याप्त निश्चल परमात्मा के निमित्त प्रयत्न करती है और गौ स्वर्ग युक्त विदुषी स्त्रियों को शब्द कराती अर्थात् जल के समान निर्मल वचनों को छांटती अर्थात् अविद्यादी दोषों को अलग करती हुई वह संसार के लिए अत्यंत सुख करने वाली होती है।

ऋग्वेद

स्त्री को परिवार और पत्नी की महत्त्वपूर्ण भूमिका में चित्रित किया गया है। इसी तरह, वेद स्त्री की सामाजिक, प्रशासकीय औरा राष्ट्र की सम्राज्ञी के रूप में वर्णन भी करते हैं।

ऋग्वेद के कई सूक्त उषा का देवता के रूप में वर्णन करते हैं और इस उषा को एक आदर्श स्त्री के रूप में माना गया है। कृपया पं श्रीपाद दामोदर सातवलेकर द्वारा लिखित ''उषा देवता'', ऋग्वेद का सुबोध भाष्य देखें।

सरांश (पृ. 121–147)

1. स्त्रियां वीर हो (पृ. 122–128)
2. स्त्रियां सुविज्ञ हों। (पृ. 122)
3. स्त्रियां यशस्वी हों। (पृ. 123)
4. स्त्रियां रथ पर सवारी करें। (पृ. 123)
5. स्त्रियां विदुषी हों। (पृ. 123)
6. स्त्रियां संपदा शाली और धनाढ्य हों। (पृ. 125)
7. स्त्रियां बुद्धिमती और ज्ञानवती हों। (पृ. 126)
8. स्त्रियां परिवार, समाज की रक्षक हों और सेना में जाएँ। (पृ. 134–136)
9. स्त्रियां तेजोमयी हों। (पृ. 137)
10. स्त्रियां धन–धान्य और वैभव देने वाली हों। (पृ. 141–146)

यजुर्वेद

स्त्री और पुरुष दोनों को शासक चुने जाने का समान अधिकार है।

यजुर्वेद

fL=;k dh Hkh lUk gkA fL=;k dk ;) e Hkkx yu d fy, ikRlkfgr djA

यजुर्वेद

शासकों की स्त्रियां अन्यों को राजनीति की शिक्षा दें। जैसे राजा, लोगों का न्याय करते हैं वैसे ही रानी भी न्याय करने वाली हों।

अंत में सिर्फ यही कहन चांहूगी कि

''माना कि पुरुष बलशाली है, पर जीतती हमेशा नारी है
सांवरिया के छप्पन भोग पर, सिर्फ एक तुलसी भारी है।''

लघुकथाएँ

महिमा श्री
त्रिभुवन विनायक रेंजीडेंसी, बी. 3
पटना, मो.–9910225441

,rjkt

''माँ! तुम कह रही थी न शादी करने के लिए। सोचता हूँ, कर ही लूँ''
''कोई पसंद है क्या?बता दे?''
''हाँ पसंद तो है। मेरे साथ काम करती है। तुम्हें ऐतराज तो नहीं होगा?''
''हमें क्यों ऐतराज होगा भला! तुम्हारी खुशी में ही हमारी खुशी है। पर हाँ लड़की मांगलिक नहीं होनी चाहिए। अपने से छोटी जाति की भी नहीं। और स्वागत में कोई कमी भी न हो......।''

nhokj

कलुआ झटपट नेता जी के आवास पर पहुँच जाना चाहता था। जल्दी पहुँचने के चक्कर में अपने बेरोजगार बेटे को करीब घसीट ही लिया था। उसके कानों में नेता जी की आवाज गूंज रही थी।

''जात–पात की दीवार गिरा कर देश को शक्तिशाली बनाना है। सबको एक साथ आगे बढ़ना है। हम सब भारत माता की संतान हैं। हम–सब की रगों में एक ही खून दौड़ रहा है।''

नेता जी के आवास पर पहुँचते ही भीड़ दीखी। सब पंक्ति में खड़े थे। उसे भी गार्ड ने रोक लिया। उसके हुलिये को आंकते हुए पूछा गया ''कौन जात हो?'' जबाव देते ही उसे बेटे के साथ साइड में कर दिया और बाकी को अंदर।

आलेख

गीतों का राजकुमार
गोपाल सिंह नेपाली

मधुकर वनमाली
मुजफ्फरपुर (बिहार)

उत्तर छायावाद का युग वस्तुतः एक संक्रमण काल था। छायावाद और प्रगतिवाद के बीच। 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद कतिपय कवियों ने कविता को अनलंकृत और अनावृत करना शुरू किया। इन्होंने ने कविता के मांसल शरीर पर पड़े भारी भरकम रहस्यमय पर्दे को उघाड़ा। ये कवि गोल–मोल बातों में बहकाने की अपेक्षा सीधी–सरल और निष्कपट अभिव्यक्ति पर जोर देते थे। बच्चन, अंचल, भगवतीचरण वर्मा, दिनकर आदि इस के प्रतिनिधि थे। पर इसका अल्पकालिक काव्य प्रवृत्ति का सब से देदीप्यमान सूर्य बिहार के चंपारण (बेतिया) में उदित हुआ था। प्रथम काव्य संग्रह उमंग (1934) ने आते ही लोगों के हृदय पर अधिकार जमा लिया।

नेपाली जी प्रकृति की गोद में पले–बढ़े। इसीलिए प्रकृति के प्रति उन के गीतों में सहज अनुराग रहा है। प्रेम और प्रकृति हीं उन की काव्य संवेदना के प्रमुख आधार रहे। इसे स्वीकार करने से उन्हें कभी गुरेज नहीं रहा।

''है एक प्रकृति की मृदुल गोद
दूसरा प्रेम का मधुर गान''

पारिवारिक पृष्ठभूमि ऐसी थी, कि नेपाली जी सैनिक होते। पर प्रकृति प्रेम ने उन के हाथों में बंदूक की जगह कलम थमा दी। और प्रकृति का वह मानस–पुत्र उसी लेखनी से प्रकृति के अद्‌भुत चित्रों को शब्दों में ढ़ालने लगा। प्रकृति के प्रति अनुराग ही वस्तुतः देश प्रेम को जन्म देता है। जिसे अपनी जमीन से प्यार नहीं, वह स्वदेश से कैसे प्रेम कर सकता है। प्रकृति और देश उन के गीतों/कविताओं में एक सार हो आएँ हैं। उनका भारत चहुं दिशाओं में प्रकृति के अद्‌भुत वरदानों से आह्लादित है–

''यह बंग देश सूर्योदय उज्जवल
भारत मुझमें नवजीवन का संबल
सूर्योस्त सिंध का करूण अरूण सुन्दर
धर जाता दीप जलाकर मेरे घर
मैं उत्तर दिशि के हिम से हूँ शीतल
मैं दक्षिण दिशि के झोंकों से चंचल''
¼uohu 1944½

नेपाली जी ने प्रकृति को संपूर्णता में ग्रहण किया है। कोई भी काव्य प्रकृति चित्रण से अछूता नहीं रहा है। शुरू से अंत तक वो प्रकृति के गीत गाते रहे। प्रकृति और प्रेम उन की कविताओं में पूरक भाव से है। यही पूर्णता उन में शाश्वत उमंग को जन्म देती है। यह उमंग भावुकता की हिलोरें मारती उस सदानीरा के समान है, जो प्रकृति और प्रेम रूपी दो किनारों के बीच प्रवाहमान होते चली गई है। यहाँ तरूणी की रूपासक्ति का वेग भी है, और निष्काम समर्पण का ठहराव भी। यहाँ किसी घूंघट या झीने पर्दे का आग्रह नहीं है। छायावाद अब बीते कल की बात है। यहाँ सब कुछ द्रष्टव्य है और नेपाली पलायनवाद के नहीं उमंग के कवि हैं।

''मेरे मानस का मुकुल मूल
था डाली पर रे रहा झूल
वन की सुषमा पर रीझ भूल
खिल उठा तुरंत हो गया फूल
ये पीले, नीले, लाल रंग
जैसी मेरे मन की उमंग।''
¼meix] 1934½

प्रगतिवादी प्रभाव भी उत्तर छायावाद में स्पष्ट होते जा रहा था। नेपाली स्वयं वर्ग विहीन समाज की स्थापना के हितैषी थे–

''जग में बहुमत है निर्धन का
पर उस पर जग का शासन है
वह अपना राजमुकुट माँगे
तो मर्यादा की उलझन है।''
¼pknuh e > kiMh] flrcj 1958½

नेपाली जी के गीतों में अनुभूति की तीव्रता है। पर वेदना से पीड़ित किसी नौका में सवार पलायन कर जाना उन्हें नहीं जंचता। भिक्षावृत्ति उन्हें रास नहीं आती। भूदान पर विनोबाजी को फटकार दिया–

''राष्ट्र पले कब तक चंदों से
लाज बचे क्या पैबन्दों से
मिटे न दुखड़ा इन धंधों से''

वे प्राकृतिक संसाधनों का न्यायोचित बँटवारा, सीधे प्रकृति के हाथों की चाहते हैं–

''मुसाफिर से क्या माँगे
धरती से माँग, गगन से माँग।''

हिन्दी के प्रति उनकी निष्ठा अटूट थी। राष्ट्रभाषा के नाम पर जब इसे अनुवाद की भाषा बनाया जाने लगा, उनका कविहृदय चुप न रह सका–

''हिन्दी है भारत की बोली
तो अपने आप पनपने दो''

नेपाली जी का उमंग लोकजीवन से जुड़ा है। इसमें निर्झर सी गति है। निर्माण और सृजन की क्षमता है। पूर्वाग्रह नहीं है। उनकी कलम क्रांति की अग्रदूत है।

''हम कलम चला कर त्रास बदलने वाले हैं
हम तो कवि हैं, इतिहास बदलने वाले है।''

अपने मुधर गीतों के कारण नेपाली सामान्य जनों के कंठ में बसते थे। बगैर नेपाली के उस दौर की कविता का प्रतिमान अधूरा रहेगा। सही मायनों में नेपाली उत्तर छायावादी कविता के कंठहार थे। इसीलिए तो उन्हें गीतों का राजकुमार कहा जाता है। प्रस्तुत है उनके गीत की चंद पंक्तियां उनकी निःस्वार्थ साहित्य साधना का परिचय देती हुई–

''अपनेपन का मतवाला था
भीड़ों में मैं भी खो न सका
चाहे जिस दल में मिल जाऊं
इतना सस्ता मैं हो न सका।''

आलेख

ये खत मातृभूमि के नाम

जननी जन्मभूमिश्च.....

भवगती प्रसाद द्विवेदी
सीताशरण लेन, मीठापुर,
पटना (बिहार)
मो.– 09430600958

प्राणों में प्यारी मातृभूमि,
चरण–कमलों में कोटिशः नमन!

यह सच है कि वैश्वीकरण के इस दौर में पूरी दुनिया सिमटकर विश्वग्राम (ग्लोबल विलेज) में परिणत हो गयी है, पर सिक्के का दूसरा पहलू यह भी है कि रोजी–रोटी अथवा अन्य विवशताओं की बदौलत मनुष्य चाहे विश्व के किसी भी कोने में रहे, अपनी मातृभूमि से बिछुड़न की टीस उसके अंतर्मन को आन्दोलित–उद्वेलित किए बगैर नहीं रहती। तभी तो माँ और मातृभूमि की श्रेष्ठता स्वर्ग से भी बढ़कर बताई गयी है– 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' हालाँकि स्वर्ग की बात महज कपोल कल्पना ही प्रतीत होती है, किन्तु यदि स्वर्ग कहीं है, तो वह माँ की गोद में और मातृभूमि के आँचल में ही मौजूद है। तभी तो जिन बिहारियों को गिरमिटिया मजदूर बनाकर मॉरिशस ले जाया गया था, उनके वंशज आज अपनी मातृभूमि पर माथा टेकने भारत आते हैं और लौटते वक्त मातृभूमि की माटी अपने साथ ले जाना कभी नहीं भूलते। दरअसल मातृभूमि न सिर्फ उर्वरा धरती, खनिज सम्पदा, नदी, जंगल, पहाड़ आदि प्राकृतिक संसाधनों का नाम है, बल्कि इसका सम्बन्ध दिल, अंतर्मन व लोकसांस्कृतिक विरासत से भी है। तभी तो मातृभूमि की रक्षा के लिए वीर जवानों ने हँसते–हँसते फाँसी के फंदे को चूम लिया था। विश्व की सभी भाषाओं में मातृभूमि की वन्दना में भावप्रवण कविताएँ रची गयी हैं और 22 अप्रैल का दिन 'मातृभूमि दिवस' के रूप में मनाया जाता है, ताकि हमारे दिल में हर हाल में, हर स्थिति–परिस्थिति में मातृभूमि के प्रति सम्मान का भाव बरकार रहे। दूसरे शब्दों में, 'मातृभूमि–अर्चना हो, देश या विदेश में।'

बाँग्ला के प्रख्यात उपन्यासकार बंकिमजी ने 'आनन्दमठ' में मातृभूमि की वन्दना में जो गति प्रयुक्त किया था, उसे राष्ट्रगीत का दर्जा हासिल है और स्वाधीनता–संग्राम में उस गीत की यादगार भूमिका रही थी। आज भी उस राष्ट्रगीत की गूँज रोंगटें खड़े कर देती है :

'वंदेमातरम्!
सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम् शस्य श्यामलां मातरम्
शुभ्र ज्योत्स्नां पुलकितयामिनीम् फुल्लकुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्
सुहासिनी, सुमधुर भाषिणीम्, सुखदां वरदां मातरम्, वंदे मातरम्

इस गीत में सच्चे मन से जन्मभूमि, मातृभूमि की वन्दना की गयी है, पर दुखद आश्चर्य इस बात का है कि कुछ लोगों को इसमें साम्प्रदायिकता नजर आती है, जबकि वंदेमातरम् गीत समूचे देशवासियों को ऊर्जास्वित करता रहा है। इस राष्ट्र की धरती माँ रत्नगर्भा रही है गीत में कहा गया है – 'मेरे देश की धरती सोना उगले/उगले हीरे–मीती/मेरे देश की धरती.....।'

सन् 1912 में रघुवीर नारायण द्वारा रचित 'बटोहिया' गीत न सिर्फ भोजपुरी भाषियों का, बल्कि देश के अधिसंख्य स्वातंत्र्य सेनानियों का कंठहार बन गया था :

'सुन्दर सुभूमि' भइया भारत के देसवा से
मोर प्रान वसे हिमखोह रे बटोहिया!
एक द्वार घेरे रामा हिम कोतवलवा से
तीन द्वार सिन्धु घहरावे रे बटोहिया!

मगर उस 'सुन्दर सुभूमि' को जब फिरंगियों ने सारे वैभव–संसाधन लूट–खसोट व तहस–नहसकर श्मशान बना दिया था, तो बाबू मनोरंजन प्रसाद सिंह का 'फिरंगिया' गीत गुंजायमान हो गया था, जिसने भारत के साथ–साथ मॉरिशस में भी आजादी का अलख जगाने में अहम भूमिका निभाई थी :–

'सुन्दर सुघर भूमि भारत के रहे रामा
आज इहे भइल समान रे फिरंगिया।
अन्न, धन, जन, बल, बुद्धि सब नास भइल
कवनो के ना रहल निसान रे फिरंगिया।'

कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने अपनी ही कहानी 'अनमोल रतन' में देश के लिए शहादत देनेवाले वीर के लहू से सनी मिट्टी को जहाँ दुनिया का सबसे वेशकीमती अनमोल रतन बताया था, वहीं 'एक भारतीय आत्मा' माखनलाल चतुर्वेदी ने मातृभूमि पर शीश चढ़ाने वाले वीरों और वीरभूमि की अभ्यर्थना सुप्रसिद्ध कविता 'पुष्प की अभिलाषा' की मार्फत की। इस अमर रचना में एक तरफ मातृभूमि की वन्दना है, तो दूसरी ओर विप्लव व क्रांति का आह्वान भी है :–

'चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ
चाह नहीं, प्रेमीमाला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ
मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जाएँ वीर अनेक।'

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की 'भातर भारती' को भला कोई कैसे भूल सकता है, जिसके 'हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी?' सवाल आज भी आत्मालोचन के लिए विवश करते हैं। साथ ही, माँ भारती के प्रति एक अरब तीस करोड़ भारतीयों के मनोभाव भी इन पंक्तियों में अभिव्यक्त होते हैं :

'मानस भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती,
भगवान! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती!'

'कुरूक्षेत्र' में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने अंततः मातृभूमि की मुक्ति की भविष्यवाणी के साथ बलिदान और प्रेम करनेवाले मनुष्य की श्रेष्ठता खास तौर से रेखांकित की है :–

आशा के प्रदीप को जलाए चला, धर्मराज,
एक दिन होगी मुक्त भूमि रण–भीति से।
भावना मनुष्य की न राग में रहेगी लिप्त,
सेवित रहेगा नहीं जीवन अनीति से।
स्नेह–बलिदान होंगे पाप नरता के एक,
धरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति से।'

'सब पूछ रहे है दिग–दिगंत' के जरिए सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'वधु वसुधा पुलकित अंग–अंग' को निरखकर इस सवाल का समाहार किया था– 'वीरों का कैसा हो वसंत?'

मगर कविवर रामावतार त्यागी अपने गीत 'समर्पण' में

मातृभूमि को तन, मन और जीवन के अतिरिक्त भी बहुत कुछ न्योछावर करना चाहते हैं :–

'मन समर्पित, तन समर्पित / और यह जीवन समर्पित
चाहता हूँ, देश की धरती / तुझे कुछ और भी दूँ।
माँ! तुम्हारा ऋण बहुत है, मैं अकिंचन
किन्तु इतना कर रहा फिर भी निवेदन
थाल में लाऊँ सजाकर भाल जब भी
कर दया स्वीकार लेना वह समर्पण
गान अर्पित, प्राण अर्पित /रक्त का कण–कण समर्पित
चाहता हूँ, देश की धरती / तुझे कुछ और भी दूँ।'

महीयसी महादेवी वर्मा ने भी माँ की मुक्ति का विश्वास दिलाते हुए लिखा था :–

बंन्दिनी जननी! तुझे मुक्त कर देंगे।
शृंखलाएँ ताप के डर से गलेंगी
भित्तियाँ ये लौ की रज से मिलेंगी
रक्त से अपने खिलाकर लाल बादल
तिमिर अब उषा का हम आरक्त कर देंगे।'

नवगीतकार अवनीश सिंह चौहान के शब्दों में, तमाम प्रवासी भारतीयों को भी मातृभूमि के आह्वान पर कान (ध्यान) देने की निहायत जरूरत है :–

'अब तो वापस आओ पंछी, तुझको नीड़ बुलाए।
आँचल माँ का तुझको हेरे /रूनझुन बिछुआ तुझको टेरे
गुमसुम द्वारे पेड़ पुराना / तेरी आस लगाए / तुझको नीड़ बुलाए।'

दरअसल मातृभूमि से जुड़ना अपनी जड़ों से जुड़ना है और अपनी जड़ों से कटे हुए लोग भले ही बहुत कुछ क्यों न हासिल कर लें, वे अपनी मौलिकता खो चुके होते हैं। मातृभूमि हमारी राष्ट्रीय अस्मिता है, स्वाभिमान है और है गौरवशाली सांस्कृतिक बोध।' विश्व के सारे ऐश्वर्य–वैभव इसके श्री चरणों में ही सन्निहित हैं।

अंत में, एक बार फिर अपना तन–मन, रक्त का कण–कण और सम्पूर्ण जीवन मातृभूमि को समर्पित करते हुए शत–शत वन्दन एवं कोटिशः नमन!

डॉ. जयशंकर जय
'किसान कुंज' कोनिया,
सारनाथ, वाराणसी–221007

विमर्श

लोकगीतों में बिरहा विधा को दिलाई पहचान

कृष्ण कुमार यादव

भारतीय संस्कृति में लोकचेतना का बहुत महत्त्व है और लोकगायक इसे सुरों में बाँधकर समाज के विविध पक्षों को सामने लाते हैं। लोकगीतों में बिरहा की अपनी एक समृद्ध परम्परा रही है, जिसे हीरालाल यादव ने नई उँचाइयाँ प्रदान कीं। हीरालाल की गायकी राष्ट्रीयता से ओतप्रोत होने के साथ–साथ सामाजिक बुराइयों में लड़ने की अपील भी करती थी। डिजिटल होते दौर में उनके बिरहा गायन को संरक्षित करके आने वाली पीढ़ियों हेतु भी जीवंत रखना जरूरी है। किसान फाउण्डेशन, उत्तर प्रदेश व नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी के संयुक्त तत्वावधान में लोकगीत बिरहा के संवाहक पद्मश्री हीरालाल यादव की स्मृति में आयोजित कार्यक्रम में उक्त विचार वाराणसी परिक्षेत्र के पोस्टमास्टर जनरल एवं चर्चित साहित्यकार श्री कृष्ण कुमार यादव ने व्यक्त किया। इस अवसर पर स्वर्गीय हीरालाल यादव के तैल चित्र एवं लोक साहित्य पर केंद्रित 'नागरी' पत्रिका का लोकार्पण भी किया गया।

पोस्टमास्टर जनरल श्री कृष्ण कुमार यादव ने कहा कि हीरालाल यादव ने बिरहा विधा न सिर्फ विशेष विधा के तौर पर पहचान दिलाई, बल्कि राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी इसे लोकप्रिय बनाया। उन्हें इसके लिए संगीत नाटक अकादमी सम्मान, यश भारती, भिखारी ठाकुर सम्मान से लेकर पद्मश्री तक से नवाजा गया। ऐसे में बनारस के तमाम स्थापित साहित्यकारों के चित्रों के बीच नागरी प्रचारिणी सभी, वाराणसी में 'बिरहा सम्राट' के चित्र को शामिल किया जाना एक नई परम्परा को जन्म देगा।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए वरिष्ठ साहित्यकार श्री हरिराम द्विवेदी (हरी भैया) ने कहा कि नागरी पत्रिका लोक विधा की कुंजी है, जिसमें लोक साहित्य एवं हीरालाल यादव का पूरा कृतित्व व व्यक्तित्व वर्णित है। साहित्य में ऐसी पत्रिकाओं की आवश्यकता है। बिरहा को राष्ट्रीय पटल पर स्थापित करने का श्रेय हीरालाल को जाता है।

विशिष्ट अतिथि डॉ. जितेन्द्र नाथ मिश्र ने कहा कि हीरालाल बिरहा के रसिया थे जिनकी मधुर आवाज ने समाज को झंकृत किया। बिरहा मात्र मनोरंजन का साधन नहीं है बल्कि यह लोक रंजन की जीवनधारा है। यह समाज में उत्साह, उमंग एवं सद्भाव पैदा करती है।

कविमंगल ने हीरालाल पर आधारित गीत से लोगों को भाव–विभोर कर दिया– ''उड़ गये पंछी कहाँ न जाने, करके पिजड़ा खाली, बिरहा की बगिया कर सूनी, हुआ अलविदा माली।'' बिरहा गायक रामदेव के सुपुत्र शारदा ने भी गीत सुनाया।

नागरी प्रचारिणी सभी के सहायक मंत्री श्री सभाजीत शुक्ल ने कहा कि हीरालाल यादव का नागरी प्रचारिणी सभी से गहरा नाता था। सभा के माध्यम से वह संसद में बिरहा गायन किये, वे सुरीली आवाज के जादूगर व ग्राम्यांचल के चितेरे रहे।

अतिथियों का स्वागत कवि शंकरानन्द, धन्नू भगत एवं किशन जायसवाल ने किया। कार्यक्रम का संचालन डॉ. जयशंकर जय एवं धन्यवाद ज्ञापन बृजेश चन्द्र पाण्डेय ने किया। स्व. हीरालाल के सुपुत्र रामजी यादव, प्रोफेसर सर्वेशानन्द, प्रोफेसर दयानन्द यादव, डॉक्टर राजेन्द्र, डॉक्टर उमाशंकर यादव, इन्जीनियर अशोक यादव, डॉक्टर दुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव व चपाचप बनारसी ने विचार व्यक्त किया। इस अवसर पर नरोत्तम शिल्पी, सिद्धनाथ शर्मा, ज्ञान प्रकाश, सुनील यादव, चौधरी शोभनाथ, राम जनम शरण, हरिहर जख्मी, कविराज, लालजी बाबा जी सहित तमाम साहित्यकार व बुद्धिजीवी उपस्थित रहे।

आलेख

इतिहास-दृष्टि और साहित्य

डॉ अमरसिंह वधान,
प्रोफेसर एमरिट्स डी. लिट्
चंडीगढ़–160023 मो.–9876301085

कभी–कभी किसी विषय के निर्वहन एवं प्रवर्तन के लिए अतीत के झरोखे से कोई प्रेरक तथा सार्थक प्रसंग दिखाई दे जाता है, जो सृजन–प्रक्रिया को रफ्तार देने में बड़ा सहायक सिद्ध होता है। यहाँ सदियों पुराना एक अर्थगर्भित प्रसंग व्याख्या सापेक्ष है। एक आदमी के साथ समुद्र के किनारे टलहते हुए एक बच्चे को छोटी–सी सीपी मिली और उसने उठाकर अपने कान से लगाई। अचानक बच्चे ने कुछ धीमी, अजीब एवं मधुर ध्वनियाँ सुनीं। उसे लगा मानो सीपी कुछ स्मरण कर रही है अर्थात् अपने समुद्र गृह की गुनगुनाहट की पुनरावृत्ति कर रही है। इन मधुर ध्वनियों को सुनकर बच्चे का चेहरा खुशी से आश्चर्यचकित हो गया। उसने एक छोटी–सी सीपी में दूसरी दुनिया की मधुर रहस्यमयी एवं संगीतमयी आवाज को बार–बार सुना। थोड़ी देर बाद आदमी ने बच्चे के पास आकर उसे बताया कि ये सीपी में से निकलती मुक्तामय बहुसंख्यक वक्र ध्वनियाँ–प्रतिध्वनियाँ हैं। दरअसल, ध्वनियों की यह गुनगुनाहट अतीत की अनसुनी समस्वरता थी, जिसने बच्चे को आश्चर्यचकित किया था।

निस्संदेह, साहित्य अध्ययन के संदर्भ में उपर्युक्त प्रकार के अनुभव के दो पहलू होते हैं। पहला, आनंद एवं मूल्यांकन और दूसरा, विश्लेषण तथा सटीक चित्रण–वर्णन। किसी छोटे से गीत या कविता का मधुर लगना या फिर किसी उत्कृष्ट कला कृति का मन को छू जाना इस तथ्य का आभास देता है कि हमने किसी नई दुनिया की खोज कर ली है, जो हमारी स्वयं की दुनिया से एकदम अलग है। इस नई दुनिया में प्रवेश करना और इसका भरपूर आनंद लेना तथा स्वयं के लिए श्रेष्ठ कृतियों से प्रेम करना ही मुख्य बात है। गौरतलब है कि हरेक कलाकृति या साहित्यिक कृति के पीछे एक मनुष्य है, मनुष्य के पीछे जाति–वंश है, जाति–वंश के पीछे प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश है जिसका प्रभाव अनजाने में बिंबित–प्रतिबिंबित होता है। हमारे लिए यह जानना भी जरूरी है कि क्या अमुक कृत अपने संपूर्ण संदेश को अभिव्यक्त करती है। यही वह संवेदनशील बिन्दु एवं निष्पक्ष कसौटी है जहाँ हम साहित्य को समझना, परखना और इसका आनंद लेना प्रारंभ करते हैं।

विश्व साहित्य की राह से गुजरते हुए एक शाश्वत तथ्य उभरकर आता है कि कलात्मकता समूचे साहित्य की एक सार्थक एवं महत्वपूर्ण विशिष्टता है। होमर दोस्तॉयवस्की, टॉल्स्टॉय, शेक्सपियर, रवीन्द्रनाथ टैगोर, जयशंकर प्रसाद आदि की कृतियाँ कलात्मक विशेषताओं से समृद्ध हैं। इनके जरिए मार्के का यह सूत्र ध्वनित होता है कि समूची कला सत्य एवं सौन्दर्य के रूप में जीवन की अभिव्यंजना है। संसार में सत्य एवं सौन्दर्य का प्रतिबिंब तब तक अज्ञात रहता है, जब तक इसे कोई संवेदनशील मानवीय आत्मा हमारे ध्यान में नहीं लाता है। ठीक वैसे जैसे सीपी की मन्द प्रतिबिंबित ध्वनियों की समस्वरता प्रायः अनसुनी ही रहती है। विलियम वर्डस्वर्थ ने सही कहा था, ''बच्चा मनुष्य का पिता है।'' कहने का प्रयोजन यह है कि हर साहित्यकार के भीतर एक उदीयमान एवं प्रतिभावान सर्जक होता है और हर बच्चे के अंदर मौलिक एवं रचनात्मक हुनर होता है, जो बड़ा बनने का सत्य संकेत भी होता है। सूखी घास अथवा पकी फसल के खेत में से गुजरते हुए लोग केवल अपने शारीरिक कष्ट को ही देखेंगे। लेकिन शायद ही उनमें से कोई फसल काटती हुई और मधुरगीत गाती हुई युवतियों के गीत को सुनने के लिए जरा रूके, जैसा कि वर्डस्वर्थ ने पहाड़ी क्षेत्र को पार करते हुए रूककर 'सौल्टिरी रीपर' के गीत को सुना था। कवि को मालूम था कि ऐसे गीत में निहित सत्य एवं सौन्दर्य से वंचित रहना भी एक दुर्भाग्य की बात है। तभी तो विलियम डेविस ने 'नेचर' शीर्षक कविता में कह ही दिया था, चिंताओं से भरी जिंदगी भी किस काम की, यदि हमारे पास जरा सा समय भी नहीं है कि हम प्रकृति को देखने–निहारने के लिए रूक सकें। सुमित्रानंदन पंत का समूचा काव्य भी इसी सत्य तथ्य का साक्षी है। अतः यह मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि कलात्मक कृति एक ऐसा दस्तावेज है जिसमें अमुक जाति एवं देश का इतिहास, विज्ञान, सृजन सब कुछ निहित है।

सभी कलाओं का कार्यक्षेत्र एवं उद्देश्य अनुदेश देना नहीं, बल्कि आनंद और हर्ष प्रदान करना है। विचारोत्तेजकता के साथ–साथ हमारी संवेदनाओं एवं कल्पना के लिए कृति की अपील भी बहुत मायने रखती है। मिसाल के तौर पर जब मिल्टन शैतान से यह कहलवाता है, ''मैं स्वयं ही नरक हूँ'' तो वह किसी सत्य की बात नहीं करता, बल्कि वह इन आश्चर्यजनक शब्दों में चिंतन और कल्पना की संपूर्ण दुनिया को खोल कर रख देता है। इसी तरह फॉस्टस हैलन की उपस्थिति में पूछता है, ''क्या ये ही वही चेहरा था जिसने हजारों जहाजों का जलावतरण कराया था?तो वह न तो किसी वास्तविकता को बयान करता है और न ही किसी उत्तर की अपेक्षा रखता है। वह एक ऐसा द्वार खोलता है जिसमें से गुजरकर हमारी कल्पना एक नई दुनिया अर्थात संगीत, प्रेम, सौन्दर्य और नायकत्व की दुनिया में प्रवेश करती है। कमाल का जादू है इन शब्दों में।''

यह भी ध्रुव सत्य है कि दुनिया सिर्फ रोटी के लिए ही जीवित नहीं रहती है। भौतिक वस्तुओं के प्रति उसकी उत्सुकता एवं तल्लीनता के बावजूद, वह किसी भी सुन्दर चीज को जान–बूझकर नष्ट नहीं होने देना चाहता। उसकी चित्रकला एवं मूर्तिकला की तुलना में यह सच्चाई उसके गीतों के संबंध में अधिक है। लोक–गीतों के बादशाह देवेन्द्र सत्यार्थी ने लोकगीतों के महत्व, इनकी शाश्वतता एवं सांस्कृतिक सौन्दर्यात्मकता को गहराई में समझा था और अलविदा करते हुए हजारों लोकगीतों का खजाना दुनिया की झोली में डाल गए। माना कि स्थायित्व साहित्य का एक अद्भुत गुण है। लेकिन साहित्य के नाम पर छापाखानों में रात–दिन प्रकाशित होने वाली असंख्य पुस्तकों एवं पत्रिकाओं में स्थायित्व की अपेक्षा करना बेमानी होगा। फिर हर कृति न तो कृतिकार का हृदय होती है और न ही आत्मा की खोज।

लेकिन पुस्तकों में स्तरीय एवं गैर–स्तरीय की भरमार की यह समस्या कोई आधुनिक एवं देश विशेष की नहीं है, जैसा कि हम मान लेते हैं। यह समस्या तो उस समय से है जब ब्रिटेन के कैक्सटन ने पहली बार फ्लैंडर से प्रिंटिग प्रेस के हजारों वर्ष पहले एलेग्जेंडरिया के विशाल पुस्तकालय में अध्ययनरत विद्वानों एवं विद्यार्थियों को लगा था कि यहाँ भारी संख्या में मौजूद चर्म पत्रों को संभालना बड़ा कठिन है।

आज एक बड़ी संख्या में भारत एवं विश्व के अन्य देशों में पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। प्रकाशन प्रलय के इस युग में जिस

भरमार से पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, शायद ही इनमें से कोई गीत, कविता, कहानी, नाटक या उपन्यास भावी युगों में पाठकों को आनंद प्रदान करने के लिए जीवित रह सके। इलियाड, ओडेसी, हैमलेट, पैराडाइज लॉस्ट, वार एण्ड पीस, गीतांजलि, कामायनी, गोदान जैसी कालजयी रचनाएँ दुबारा नहीं लिखी जाएँगी। आज के प्रकाशनों में सस्ती लोकप्रियता एवं छपाव प्रवृत्ति के कारण स्थायित्वविहीनता का प्रतिशत अधिक है। हर रचनाकार रातोंरात चर्चित एवं लाभान्वित होना चाहता है। ऐसी स्थिति में 'पढ़ने की संस्कृति' का दरिद्र होते जाना एक स्वाभाविक बात है।

देखा जाए तो साहित्य बाढ़ग्रस्त नदी की मानिंद है, जो शनैः शनैः स्वयं को दो तरीकों से परिशुद्ध करती है। पहला, कीचड़ तल में समा जाता है और दूसरा, झाग ऊपर आ जाती है इस प्रतीकात्मक संदर्भ में जब हम उन कृतियों की परख–पहचान करते हैं, जो हमारे साहित्य को आम सहमति से संस्थापित एवं प्रतिष्ठित करती हैं तो ऐसे साहित्य की निर्मल एवं पारदर्शी धारा मैल अर्थात स्तरहीन कृतियों को अलग कर देती है। यहाँ अर्थगर्भित संदर्भ यह है कि साहित्य का विश्वसनीय मूल्यांकन ही इसके स्थायित्व को निर्धारित करता है। यदि साहित्य की अपील व्यापक मानवीय रुचियों एवं सहज मानवीय संवेदनाओं के लिए हो, तो यह एक तरह से साहित्य की सार्वभौमिकता का सूर्योदय होगा। पर यह तभी संभव है, जब साहित्य का मूल स्वर विश्वजनीन हो। हर राष्ट्र को अपने साहित्य पर गर्व हो सकता है और होना भी चाहिए। वैसे यूनान, इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस आदि देशों के साहित्य को प्रायः राष्ट्रीय एवं प्रजाति साहित्य से संज्ञापित किया जाता है, जबकि इन साहित्यों में उथलापन के कई प्रमाण मिलते हैं जो इन देशों के लोगों की कतिपय विलक्षणताओं का ही प्रतिफलन है।

फिर भी, इस सत्य को कतई झुठलाया नहीं जा सकता कि उत्कृष्ट साहित्य किसी राष्ट्रीय अथवा भौगोलिक सीमाओं का मोहताज नहीं होता। साहित्य का क्षेत्र तो संपूर्ण मनुष्यता है। साहित्य मुख्यतः आवेगों, संवेदनाओं, प्रेम, घृणा, दुःख, सुख, भय विश्वास आदि से अधिकृत है और ये सभी मानव स्वभाव का अविच्छिन्न अंग हैं। साहित्य इन मनोभावों को जितना प्रतिबिंबित करेगा, उतना ही यह लोगों एवं हर प्रजाति में प्रतिक्रिया जागृत करेगा। जहाँ भी लोग वीरोचित हैं, वे होमर, मिल्टन एवं वाल्मीकि को स्वीकार करेंगे और जहाँ जो लोग अपने बच्चों से प्रेम करते हैं, उनके हृदय इडिपस और किंग लीयर के घातक दुःख से विलोड़ित हो उठेंगे। ये सभी देदीप्यमान उदाहरण साक्षी हैं कि सार्वभौमिक मानव रुचि को अपील करने वाली कोई एक साहित्यिक कृति या छोटा–सा गीत कालजयी बन जाता है।

कोई भी रचनाकार अपनी आत्मा की सहजात रंगत दिए बगैर मानव जीवन की व्याख्या नहीं कर सकता। यही वह निजी तत्व है जो उसकी शैली को निर्मित एवं संस्थापित करता है। शैली ही मनुष्य की आत्मा है जो मनुष्यता की भावनाओं एवं विचारों को प्रतिबिंबित करती है। प्रत्येक कालजयी कृति में वस्तुनिष्ठ तथा प्रजाति के गहन विचारों व भावों के तत्त्व मौजूद होते हैं जो लेखक के निजी जीवन और अनुभव द्वारा रंजित होते हैं। आज का मनुष्य द्विवचन प्राणी है, क्योंकि उसका बहारी स्वभाव तथा आंतरिक स्वभाव अलग–अलग है। वह कार्यकर्ता ही नहीं है, अपितु स्वप्नों का स्वप्नकार भी है। ऐसी स्थिति में मनुष्य को समझने के लिए भले ही वह कितनी ही आयु का हो, उसके इतिहास की अपेक्षा उसे ही गहराई में जानना–पहचानना जरूरी है। इतिहास तो इसके कार्यों एवं उसकी बाहरी सफलताओं को ही अभिलेखित करता है। लेकिन हर महान कार्य किसी आदर्श की उपज होता है और इसे समझने के लिए हमें उसका साहित्य पढ़ना चाहिए, जहाँ उसके आदर्शों एवं मूल्यों को यथार्थता से दर्ज किया गया है।

जब हम घुमक्कडों, समुद्री डाकुओं, बनजारों, गवेषणाकारों आदि के बारे में पढ़ते हैं तो हमें उनकी आदतों, रुचियों, झुग्गियों, भूमियों एवं रहन–सहन के बारे में कुछ जानकारी मिलती है। यह सब जानकारी रुचिकर अवश्य है। लेकिन इससे हमें उनके पुराने पूर्वजों के बारे में पता नहीं चलता। ये वे लोग थे जिन्होंने अपने समय में सोचा और महसूस किया था। जीवन और मृत्यु के बारे में वे क्या सोचते थे, उन्होंने किन चीजों को चाहा और प्यार किया, वे किससे डरते थे तथा ईश्वर और मनुष्य के प्रति उनका कैसा श्रद्धा–आदर भाव था, इसकी जानकारियाँ इतिहास के स्मृति संग्रहालय में मौजूद हैं। लेकिन जब हम इतिहास से साहित्य की ओर लौटते हैं, जो उन्होंने स्वयं पैदा किया, तब हमारा उनसे वास्तविक परिचय होता है। वे दृढ़ निश्चयी एवं साहसी लोग थे और हमारी तरह इंसान भी थे। उनमें अपने वंशजों की आत्माओं को याद करके मनोभाव जागृत होते थे। प्रकृति, स्वतंत्रता, खुला समुद्र, देश, नारी, ईश्वर आदि के प्रति उनकी आस्था, विश्वास, निष्ठा, वफादारी एवं प्रेम को जब हम उनके ही दीप्तिमान काव्यांशों में पढ़ते हैं तो हमारी संवेदनाएँ जागृत हुए बिना नहीं रहतीं। जॉन कीट्स की 'ओड टू ए ग्रेशियन अर्न' एवं मैथ्यू आर्नोल्ड की 'द स्कॉलर जिप्सी' कविताएँ युगीन संदर्भों में ले जाकर हमें संवेदनमय बनाती हैं।

जाहिर है कि युगीन लोगों को समझने के लिए उनका इतिहास पढ़ना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उनका साहित्य, जिसमें उनके साकारति सपनों का अभिलेख है, भी पढ़ना चाहिए। इस संदर्भ में अरस्तू ने ठीक ही कहा था, 'काव्य इतिहास की अपेक्षा अधिक गंभीर एवं तात्त्विक है।' अतः बड़ा सत्य यह है कि साहित्य लोगों के आदर्शों को जिन्दा रखता है, इन्हें लुप्त नहीं होने देता। यूनानी बहुत ही अद्भुत व्यक्ति थे जिनके कुछेक आदर्शों को विश्व साहित्य अपने हृदय में समाए हुए हैं। यूनानियों के सौन्दर्यात्मक आदर्श विनाशी पत्थरों एवं अविनाशी आदर्श गद्य और काव्य में आज भी विद्यमान है। हर देश का साहित्य अपनी जातियों–प्रजातियों के आदर्शों को सुरक्षित रखकर भावी पीढ़ी के लिए इनके महत्त्व को सुनिश्चित करता है। स्वतंत्रता और समान मनुष्यत्व का एक सुन्दर, प्यारा एवं कालजयी आदर्श प्रत्येक साहित्य में सर्वाधिक मूल्यवान दाय के रूप में सदैव उपस्थित रहता है। साहित्य ही क्यों, हमारी सभी कलाएँ हमारे सभी विज्ञान और यहाँ तक कि आविष्कार आदर्शों के चौखूँटा पर ही स्थापित होते हैं।

कहना न होगा कि साहित्य मानवीय और आत्मा का इतिहास है और इतिहास अपने स्मृति संग्रहालय में साहित्य के लिए आँच सहित संवेदना और सामग्री–अवशेष सँभाले रखता है। इतिहास एक समर्थक एवं सहायक के रूप में साहित्य के पीछे चलता है। इतिहास का श्रेय पाकर ही साहित्य मनुष्य के कार्यों और उसकी आत्मा का परिचय कराता है। कालिदास, शेक्सपियर, जयशंकर प्रसाद और मोहन राकेश के नाटक इसी स्थायी सत्य को रेखांकित करते हैं। मनुष्य, शहर, सरकारें, सभ्यताएँ आदि इस पृथ्वी से समाप्त हो जाती हैं, लेकिन साहित्य सत्य एवं सौन्दर्य की इबारत में मूल्यों एवं आदर्शों को पीढ़ी–दर–पीढ़ी सँजोए रखता है। इतिहास का झरोखा अतीत की ओर खुलता है, जबकि साहित्य का वर्तमान की ओर। इतिहास नामों एवं घटनाओं का संग्रहालय हैं, साहित्य सब कुछ है।

आलेख

अगस्त क्रांति एवं दामोदर प्रसाद सिंह एक आकलन

आलोक भारती
जयनगर, मधुबनी (बिहार)
मो.– 8292350609

सभी ऐसे लोग जो हिन्दु, मुस्लिम, सिकख और ईसाई हों, देश के वासी हैं। यहाँ की धरती और आसमान ने उन्हें एक ही जगह पनाह दी है। अगर वे इससे इन्कार करते हैं तो उनका जीवन स्तर, रहन–सहन और सोच इन्हें कभी माफ नहीं करेगा। हमारे लिए यह सोचना भी आसान नहीं होगा कि हम किसी और राष्ट्रीयता का हिस्सा हैं। हमारी पूरी वंशावली सभी पूर्वज यहीं के हैं।

एक संविधान जो देश के नागरिकों को शिक्षा, सामाजिकता और अर्थ व्यवस्था के अधिकार बराबरी से देना चाहता है, उसके लिए यह सुनिश्चित करना होगा कि ऐसे सभी नागरिकों की सांस्कृतिक आजादी बनी रहे। कोई भी जाति या धर्म की आड़ में किसी को दबाएँ नहीं। ऐसा संविधान ही सच्चे अर्थों में लोकतांत्रिक होगा। जहाँ हम राजनैतिक, आर्थिक और समता की आजादी की ओर बढ़ेगें। तब हमें इस बात का गर्व होगा कि हम इस महान भाग का हिस्सा हैं। राष्ट्र का निर्माण उस सतत जीवन शैली से होता है; जिसे हमने किया है। यह जीवन शैली हमारी मिट्टी और जमीन से जुड़ी है।

यह ऐसी सभ्यता है जो सिंधु घाटी से शुरू होकर हमारे वर्त्तमान तक आती है। जिससे सभी सम्प्रदाय अथवा जातियाँ जुड़ी हैं। यह एक संगीत मंडली के समान है, जिसमें बहुत सारे वाद्ययंत्र हैं, सभी के सुर अलग–अलग होते हुए भी वे सभी एक गीत की ओर केन्द्रित होते हैं।....और तब एक सुन्दर गीतकार का रचना विभिन्न वाद्यों के माध्यम से स्वर का आकार लेती है। इस देश ने हमेशा ही ऐसी अनेकता में एकता की चाहत की है। इसने कभी किसी पर बदले की भावना नहीं दर्शायी। यहाँ समय–समय पर पारसी, यहूदी, ईसाई और मुसलमान भी आए। किसी ने उनसे यह नहीं पूछा कि वह अपना धर्म और अपनी आस्था बदले।.....और कालान्तर में वे हारे समाज का हिस्सा बन गए। यही भाव है जिसे हमें हिंदू मानव धर्म कहना चाहिए। 'जीओ और जीने दो'– ही इस देश का सिद्धांत है। जो सभी को चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय अथवा धर्म को मानने वाला हमारे हों, सभी को एक सूत्र में बाँधे रखता है। छः हजार साल से भी पुरानी हमारी यह सांस्कृतिक परम्परा हमारे लोकतांत्रिक मूल्यों के परिदृश्य पर आज भी अंकित है।

उक्त वक्तव्य देश के ख्याति लब्ध चिन्तक एवं पूर्व राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन का है। जिसमें उन्होंने लोकतांत्रिक प्रक्रिया एवं आम लोगों की मानसिकता को निरपेक्ष भाव से दर्शाया है। साथ ही ऐसे लोगों की मानसिकता पर भी प्रहार किया है, जो इस देश में रहते हुए भी देश की जनभावना को उकसाने का कार्य करते हैं। साथ ही यह आज भी उतना ही प्रासंगिक है।

लगभग छः सौ वर्षों तक मुगलों का देश पर शासन काल रहा। इस दौरान उन्होंने हिन्दुओं पर तरह–तरह अत्याचार किए। अनेकानेक प्राचीन मंदिर ध्वस्त किए गए। शहरों के नाम बदलने के साथ ही आम लोगों पर जजिया कर लगा दिया गया। कई राजा महाराजाओं को अपने अधीन कर लिया गया। ईस्टा इण्डिया कम्पनी के नाम से भारत में व्यवसाय करने के बहाने धीरे–धीरे अपने पैर पसारने शुरू कर दिए। इसी क्रम में जमींदारों, राजाओं पर अपना आधिपत्य भी जमाना शुरू कर दिया। दरअसल उस काल में देश की शासन व्यवस्था किसी एक सूत्र में नहीं बँधी थी। अधिकांश राजाओं, नवाबों में मत भिन्नता थी।......और जो अंग्रेजी शासन के खिलाफ थें, उनमें देशप्रेम से अधिक हिन्दुत्व की भावना थी। जहाँ कहीं भी लोग आन्दोलित होते अंग्रेजी फौज पूरी शक्ति से दमन चक्र चलाकर उसे दबाने का प्रयास करती।

पलासी युद्ध के बाद 1857 में जनक्रांति के मध्य अंग्रेजों के भारत में पैर जमाने की बात कई दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है। ऐतिहासिक तथ्य यह भी है कि 1757 में बंगाल के नवाब को हराकर सन्यासी विद्रोह 1763 और चुहाड़ विद्रोह 1767 को दबाकर अंग्रेजों ने भारत में कूटनीति का सहारा लेकर अपने राज्य का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया था।

इस प्रकार राष्ट्रीयता का प्रथम उत्थान 1857 के विद्रोह में मिलता है। अंग्रेजी शासन के विरुद्ध भारत की संगठित राष्ट्रभावना का प्रथम आगाज था यह। पहली बार प्रदेश अथवा सम्प्रदाय के संकीर्ण दृष्टिकोण से निकलकर राष्ट्रीयता ने समग्र देश को अर्न्तविभूत कर लिया। हिन्दी काव्य में यह काल भारतेन्दु युग के नाम से चर्चित है। हालाँकि भारतेन्दु के समय तक 1857 का स्वीधनता संग्राम विफल हो गया था। किंतु अपने पीछे वह एक राष्ट्रीय चेतना छोड़ गया। जिसका प्रभाव उस समय के विचारशील लोगों पर अधिक पड़ा।

एक तथ्य यह भी है कि 1857 की जनक्रांति को दबाने में अंग्रेजी हुकूमत को ढ़ाई वर्ष लग गए। इस दौरान ईस्ट इण्डिया कम्पनी को डेढ़ करोड़ पौंड का नुकसान उठाना पड़ा। जबकि जनक्रांति को पूरी तरह दबाने में चार करोड़ साठ लाख पौंड की हानि उठानी पड़ी।

वास्तव में स्वाधीनता संग्राम का इतिहास विद्रोहों, आन्दोलनों, संघर्षों, विरोधों का इतिहास रहा है। जिसकी पुष्टि भारतीय इतिहास में ही नहीं, अपितु विदेशी इतिहासकार जी.एम. ट्रिवेलियन की पुस्तक–'सोशल हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिशर्ज'– एवं व्हेरा एंस्टेन की चर्चित पुस्तक–'द इकोनोमिक डेवलपमेंट ऑफ इण्डिया'– में भी मिलती है।

जानकारों के अनुसार कलकत्ता का एक क्रूर प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट किंग्स फोर्ड था, जिनकी बदली बिहार के मुजफ्फरपुर में हो गयी थी। प्रफुल्ल चाकी और खुदी राम बोस ने उन्हें माने की योजना बनायी। इस क्रम में 30 अप्रैल 1908 को उन पर बम फेंका गया, मगर वह बच गया। फिर 11 अगस्त 1908 को नासिक के अंग्रेज जिलाधिकारी मि.जैक्सन को 16 वर्षीय बालक कान्हेरे ने गोलियों से भून डाला। इस संबंध में वीर–सावरकर के बड़े भाई गणेश दामोदर को गिरफ्तार कर लिया गया। फिर 13 मार्च 1910 को लंदन के रेल्वे स्टेशन पर दामोदर सवारकर गिरफ्तार कर लिए गये। उन्हें बन्दी बनाकर भारत लाये जाने के क्रम में सावरकर जहाज से कूद पड़े, किन्तु उन्हें फ्रांस के किनारे पर फिर पकड़ लिया गया। फिर उन्हें आजीवन कारावास की सजा देकर अंडमान भेज दिया गया। जहाँ वीर सावरकर को 13 वर्षों तक कठोर यातनाएँ झेलनी पड़ी।

इसी तरह 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर में वैसाखी के दिन जलियांवाला बाग में एक सभा का आयोजन रॉलेट ऐक्ट के विरोध में किया गया था। इसमें अंग्रेज अधिकारी जनरल डायर ने जलियांवाला

बाग को सशस्त्र सैनिकों से घेरवाकर, गेट पर मशीनगन एवं राईफल लगवाकर शांत बैठे श्रोताओं पर गोलियों की बौछार कर दी। इसके साथ ही छोटे बच्चों, बूढ़ों व महिलाओं को गोलियों से भून डाला। बाग के पास ही गली में शरण लेने वाले लोगों की भी निर्ममता से हत्या कर दी गयी। घटना का समाचार फैलते ही पूरे देश में रोष फैल गया। इस घटना ने युवाओं के हृदय को विद्रोह एवं क्षोभ से भर दिया। सरदार भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि ने सशस्त्र क्रांति के द्वारा मातृभूमि को आजाद कराने की प्रतिज्ञा ली। 1925 के काकोरी षडयंत्र, 1929 के लाहौर षडयंत्र एवं 1930–31 के चटगाँव आन्दोलन आदि में यह भावना चरम पर पहुँच गयी। क्रांतिकारियों की वीरतापूर्ण कारवाईयों ने लोगों पर गहरा प्रभाव डाला।

इस प्रकार स्वाधीनता संग्राम की चिंगारी लगातार हो रही घटनाओं को अंजाम दिए जाने से सुलगती रही। 1925 के काकोरी कांड में ट्रेन रोक कर खजाना लूट लिया गया। इसमें कई लोग शहीद हुए। लाला लाजपत राय के देहांत के बाद बदला लेने के क्रम में भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद ने सरकारी अफसर सौंडर्स की हत्या करने का निश्चय किया। उनके सहयोगी राजगुरु ने 15 दिसम्बर 1928 को उन्हें गोली मार दी। इसी प्रकार 23 दिसम्बर 1930 को पंजाब के गवर्नर को गोली मार कर घायल कर देने के कारण हरकिशन को फांसी हो गई। इस तरह निरन्तर घटनाएँ होती रही। अंग्रेजी हुकूमत भी समय के साथ ढ़ीली पड़ती गयी।

इस तरह देश में पुनरूत्थान का आन्दोलन शुरू हो गया। इसमें कई विचारशील व आध्यात्मिक महापुरुषों यथा राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द जैसे कई लोगों ने नेतृत्व की बागडोर सम्भाल ली।

डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में– उस समय एक ऐसी विचार धारा पनपने लगी जो समन्वय की नीति पर अधिक बल देती थी। इसमें हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, और पारसी सभी धर्म और सम्प्रदाय के लोगों के लिए स्थान था। भारत को इन सभी की मातृभूमि मानकर विदेशी शासन के विरुद्ध मोर्चा बनाने का प्रयास किया जा रहा था। इस विचारधारा की प्रतीक इण्डियन नेशनल कॉंग्रेस थी। गुलामी सबसे बड़ा अभिशाप है, देश के लिए। सभी विषमताओं का मूल कारण सामाजिक, आर्थिक या चाहे नैतिक हो, विदेशी शासन है। अतः पूर्ण स्वराज के लिए संघर्ष राष्ट्रीयता का मुख्य अंग बन गया।

हमारी मातृभूमि पर कोई विदेशी शासन करें। हम अपने ही घर में बन्दी बने रहे। अत्यन्त शर्म की बात है। हमें इस लौह श्रृंखला को प्राणों की आहूति देकर भी छिन्न–भिन्न करना होगा।

इस कार्य में देश के कई राष्ट्रीय स्तर के चर्चित साहित्यकार जिनमें कालजयी मुंशी प्रेमचंद, मैथिली शरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, सूर्य कांत त्रिपाठी निराला, रामधारी सिंह दिनकर, सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहन लाल चतुर्वेदी के साथ ही जयनगर के स्वतंत्रता सेनानी एवं वरिष्ठ कवि महावीर प्र. मस्करा, समस्तीपुर के हरिवंश तरूण आदि ने अपनी कलम की पैनी धार से आजादी की लौ को वृहत रूप प्रदान किया।

इस संदर्भ में यहाँ कुछ साहित्यकारों के काव्य की पंक्तियों में उनके मन की पीड़ा दर्शायी गयी है–

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बंधन में...।
सिंधु पार वह विलख रही व्याकुल मन में....।।
– मैथिली शरण गुप्त।

बलि होने की परवाह नहीं, कष्टों का राज रहे....।
मैं जीता, जीता.....जीता.....हूँ, माता के हाथों स्वराज रहे...।।
–माखन लाल चतुर्वेदी

कलम आज उनकी जय बोल
जली अस्थियाँ बारी–बारी
छिटकाई जिनने चिंगारी....।
जो चढ़ गए पुण्य वेदी पर....
लिए बिना गर्दन का मोल।।
कलम आज उनकी जय बोल.....।
–रामधारी सिंह दिनकर

इसी प्रकार महान स्वतंत्रता सेनानी, कर्मयोगी, समाज सेवी एवं किसान नेता स्मृतिशेष दामोदर प्र. सिंह जैसे त्यागी दिव्य पुरुष प्रातः स्मरणीय हैं। उनके पुत्र हरि किशोर प्र. सिंह जिनका पत्रकारिता एवं साहित्य से जुड़ाव रहा है। अपने पिता की अमूल्य निधि को पुस्तक रूप में संचित करने की प्रेरणा दी है। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन जहाँ एक तरह से विदेशी शासकों के विरुद्ध आंदोलन था, वहीं दूसरी तरफ वह विदेशी शासकों के देशी सहायक यानि भारतीय जमींदारों, सामंतों के विरुद्ध किया जाने वाला व्यापक आंदोलन भी था। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख चरण भारत छोड़ो आंदोलन में बिहारी किसानों ने भी अहम भूमिका निभायी थी।

8 अगस्त 1942 को बबई में कॉंग्रेस कमिटी के – 'भारत छोड़ों' प्रस्ताव पारित होने के साथ ही गाँधी, अबुल कलाम आजाद, सरोजनी नायडू विनोवा भावे सहित कई बड़े नेता बड़े पैमाने पर गिरफ्तार कर लिए गए। इसे अगस्त क्रांति का प्रारम्भिक दौर भी कहा जा सकता है।

बिहार में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के आंदोलन की अगुवायी करने के साथ ही इसमें समाज के सभी वर्ग के लोगों ने भाग लिया। कॉंग्रेसी सिद्धांत को न समझने वाले किसानों ने भी बढ़–चढ़कर भाग लिया। आखिर 9 अगस्त 1942 को राजेन्द्र प्रसाद गिरफ्तार कर लिए गए। उनके साथ फूलन वर्मा, मथुरा प्रसाद, श्री कृष्ण सिन्हा, अनुग्रह नारायण सिंह सरीखे नेता भी गिरफ्तार हुए। पटना में स्कूलों एवं कॉलेजों में पूरी हड़ताल रही। 11 अगस्त 1942 को पटना में विधानसभा भवन में झंडा फहराने के क्रम में पटना के जिलाधीश डब्ल्यू जी. आर्चर के आदेश पर वहाँ पहुँची भीड़ पर गोली चला दी गयी। इसमें रामानन्द सिंह, सतीश प्रसाद झा, जयपति कुमार, देवीपद चौधरी, राजेन्द्र सिंह, राम गोविन्द सिंह एवं उमाकान्त सिंह आदि अनेक छात्र शहीद हो गए। सचिवालय गोली कांड से लोग आक्रोशित हो गए। फिर तो विद्यार्थी, वकील, दुकानदार एवं किसान सभी अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ हो गए। पूरे बिहार में रेल पटरियाँ उखाड़ दी गयी। टेलीफोन लाईने काट दी गयी। डाकघरों, रेल्वे स्टेशन, थानों तथा सरकारी इमारतों को जला दिया गया। पुलिस पर भी आक्रमण किए गए। आंदोलन को दबाने के लिए अंग्रेजी हुकूमत ने भीषण दमन चक्र चलाया। युवकों की कोड़ों और बेंत से पिटाई की गयी। गोलियाँ चलाने के साथ ही सामुहिक जुर्माना भी लगाया गया। औरतों को भी अपमानित किया गया। फिर भी आंदोलन की तीव्रता में कमी नहीं आयी। फिर पूरे बिहार में इसका विस्तार हो गया।

घटना–क्रम के अनुसार सारण जिले के लोगों ने भागवान

बाजार स्टेशन पर प्रदर्शन किया। छपरा कचहरी स्टेशन जला दिया गया। मुजफ्फरपुर जिले के बाजपट्टी में अनुमण्डल अधिकारी, एक थानेदार एवं कई सिपाहियों को मार दिया गया। सोनपुर जंक्शन पर खड़े तीन इंजनों में आग लगा दी गयी। इसी तरह दरभंगा के सिंहवाड़ा में दूर संचार के साधन नष्ट किए गए। मीनापुर में थानेदार को जला दिया गया तो शाहाबाद में पुलिस फायरिंग में कई लोग शहीद हो गए। पाँच हजार की भीड़ ने डुमरांव में राष्ट्रीय झंडा फहराया। गया के एक गाँव में श्याम बिहारी तो अरवल में दुसाध सिंह मारे गए। 13 अगस्त को पूर्णिया में झंडा फहराने के क्रम में ध्रुव कुमार सहित कई लोग मारे गए। 16 अगस्त को कटिहार में मिलिटरी कैम्प जलाया गया। पूर्णिया में कई लोग गिरफ्तार हुए। मुंगेर जिले के 20 में से 10 दस थानों पर कब्जा कर लिया गया। इसी तरह तेघड़ा, सिमरिया, रुपनगर, बछवाड़ा स्टेशन जला दिए गए। तारपुर में भीड़ पर गोलियाँ चलायी गयी। सैकड़ों लोग मारे गए। 29 अगस्त को सहरसा में गोली चली, जिसमें हरिकांत झा, कमलेश्वर मंडल, भोला ठाकुर एवं केदारनाथ तिवाड़ी मारे गए। सुपौल थाने पर कब्जा करने के क्रम में कई लोग पकड़े गए। फिर उनकी बेंत से पिटाई की गयी। संथाल परगाना के देवघर में पुलिस की गोली से असरफी लाल मारे गए। फिर बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियाँ हुई।

इस तरह अगस्त क्रांति के दौरान 30 अगस्त 1942 तक 14,478 लोग गिरफ्तार हुए। वहीं 137 लोग मारे गए। इसके साथ ही 362 लोग जख्मी हुए। इस क्रम में कई जगह लोगों ने अपना शासन स्थापित कर लिया। इस प्रकार सारण के मांझी, दिघबाड़ा, रघुनाथपुर, सिसवन, परसा, वैकुण्ठपुर, गड़खा में ब्रिटिश शासन ठप हो गया। हाजीपुर, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, सीतामढ़ी आदि कई जगहों पर प्रतिवर्त्ती शासन चलता रहा। भागलपुर के अमरपुर में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की गयी। लोकनायक जयप्रकाश नारायण को उनके साथियों सहित 3 नवम्बर 1942 को हजारीबाग जेल से छुड़ा लिया गया। इसमें सूरज नारायण सिंह, सरदार निलास नन्द एवं अमीर सिंह आदि ने अहम भूमिका निभायी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राणों का अर्घ्य लिए क्रांतिकारी पिस्तोंलों, बंदूकों एवं बमों से अंग्रेजी राज्य की नींव हिला रहे थे। जिसमें अनगिनत क्रांतिकारियों ने मातृभूमि की रक्षा के लिए संघर्ष में अपने शीश चढ़ा दिए। शेष जेलों में बंद कर दिए गए। जेल की सजा भोग रहे क्रांतिकारियों में से कई ने जेल की भीषण यातना सहते हुए अपनी आहूति दे दी।

आखिर गाँधी जी ने घोषणा की – ''यह मेरी जिन्दगी की आखिरी लड़ाई है। आजादी की मांग से कोई समझौता नहीं होगा। आजादी पहले, उसके बाद कुछ और....।''

दरअसल ब्रिटिश हुकूमत चाहती थी गाँधी जी यह आंदोलन वापस ले लें। लेकिन गाँधी जी ने 9 फरवरी 1943 को हुकूमत की हठ धर्मिता के विरोध में 2 दिन तक उपवास रखा।

पंडित नेहरू, महात्मा गाँधी, सरदार पटेल, और जिन्ना यह सच्चाई समझ नहीं पाए कि आजाद हिन्द फौज के सेनानियों द्वारा पैदा की गई साम्प्रदायिक एकता को विस्तार मिल जाता तो शायद भारत के विभाजन को रोका जा सकता था। हजारों लोगों को घर से बेघर नहीं होना पड़ता। सुभाष चन्द्र बोस का नायकत्व इन भारतीय नेताओं के लिए असहनीय था। अंग्रेजों की नीति ही यही थी, फूट डालों और राज करो। शायद यही कारण था कि जाते–जाते अंग्रेज शासक भारत–पाकिस्तान के बीच हमेशा के लिए नफरत के बीज बो गए।

अब एक ऐसे शख्स की यहाँ चर्चा करना आवश्यक प्रतीत हो रहा है। जिसके बिना शायद यह आलेख ही अधूरा रहेगा। या यों कहें कि इस आलेख के प्रेरणा स्त्रोत ही चिरस्मरणीय दामोदर प्र. सिंह हैं। उनके अन्दर अल्पकाल से ही देश भक्ति का भाव हिलोरें मारने लगा था। स्वयं भूमिगत रहते हुए भी अपनी टीम के स्वतंत्रता सेनानी साथियों के साथ 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में तन, मन, धन से बढ़–चढ़कर भाग लेते रहे। इनके सहयोगियों में राम संजीवन ठाकुर, डॉ. शम्भू नारायण शर्मा, मुनेश्वर चौधरी, गोपाल जी मिश्रा, रामेश्वर प्र. शाही आदि कई प्रमुख लोग स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रहे। जिनकी रंगों में देश प्रेम की भावना भरी थी। दामोदर बाबू जुल्म की आंच में तपकर इस्पात बन चुके थे। उनकी सारी कमजोरियाँ जल चुकी थी। उनके भीतर सोयी हुई शक्ति का स्रोत कहीं बाहर से नहीं उनके अन्दर ही था। कवि केदार नाथ अग्रवाल के शब्दों–

'मैंने उनको जब–जब देखा। लोहा देखा/लोहा जैसे तपते देखा।
गलते देखा/ढलते देखा/मैंने उनको गोली जैसे चलते देखा

भूदान यज्ञ के महान ऋषि विनोवा भावे एवं महात्मा गाँधी जी के विचारों एवं सिद्धांतों का उन्होंने जीवन पर्यन्त निर्वाह किया। इस क्रम में उन्होंने समाज के समक्ष एक आदर्श दृष्टांत पेश किया। उनपर जैनाचार्य कुन्दकुंद की अमिट छाप थी।

इनका कार्यक्षेत्र मुजफ्फरपुर से वैशाली तक सीमित रहा। वैशाली के चतुर्दिक विकास में किसानों की सम्पन्नता, शिक्षा की गुणवत्ता, श्रम और श्रमिकों के महत्व को एक जागरूक समाजसेवी के रूप में वे खूब समझते थे। इसीलिए उन्होंने कई शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना और किसान मजदूरों के समक्ष उपस्थित कठिनाईयों को अपनी प्राथमिकताओं में रखा। इसी क्रम में आर.पी.एस महाविद्यालय, जैतपुर, राजकीय जगत सिंह उच्चतर महाविद्यालय, तथा आदर्श माध्यमिक विद्यालय, मानिकपुर की स्थापना शिक्षा के प्रति दामोदर बाबू के लगाव को प्रमाणित करता है। जिनके विकास में उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका रही।

आधुनिक परिवेश में बाजारवाद, उदारी करण, उप भोक्तावाद का नंगा सच हमारी नजरों के सामने हैं। स्वतंत्रता सेनानी व किसान नेता दामोदर प्र. सिंह के विचार आज के संदर्भ में और भी प्रसंगिक हो गए हैं।.....और इस तरह उनके विचारों और सिद्धांतों को अपने जीवन में उतार सकें तो यह उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। इस कार्य में उनके विचारशील एवं क्रियाशील सुपुत्र श्री हरि किशोर जी पूर्णतया निपुण हैं। हमें आशा है कि उनके बताए मार्ग पर चलकर एक नयी ऊर्जा एवं प्रेरणा को अपने अंतर में महसूस करेंगे।

...और अब अंत में हमारी निर्बलता और विवशता की नींव पर अपने स्वार्थ के महल बना अंग्रेज हमें सदियों तक लूटते रहे। बर्बर अंग्रजी हुकूमत की जड़ों पर भारत माँ के इन्हीं सपूतों ने अपनी शसस्त्र कार्रवाईयों द्वारा जोरदार प्रहार करते हुए अपने प्राण न्योछावर कर दिए।

आज आजाद भारत के नेता भी जनता की विवशता और निर्बलता का नाजायज लाभ उठाकर अपने स्वार्थ के महल बनाने की चाल अंग्रेजों की ही तरह चलते नजर आ रहे। जिस पर आने वाली नयी पढ़ी को विचार करना होगा।.....और इस तंत्र को, इस राजनीतिक परिवेश को बदलना होगा।

कहानी

वसीयत

मदन गुप्ता सपाटू
पंचकूला हरियाणा
मो.– 9815619620

मित्तल साहब को भगवान ने ऐसे समय अपने पास बुला लिया जब बहादुर शाह जफर की ग़ज़ल ''दो गज जमीं भी न मिली कूए–ए–यार में'' केवल इतिहास में ही सुनी जाती थी परंतु 2021 का ऐसा वक्त भी आया कि तीन बदनसीबों को न तो दो गज जमीन ही मिल पाई और न चार कंधे नसीब हो पाए। हालाँकि मित्तल साहब बहुत सोशल थे और सोशियोलॉजी के प्रोफेसर थे, सबके मरने–जीने में सबसे पहले पहुँचते थे। शोकसभा में सब को वेदों, पुराण, गीता आदि के श्लोक आदि उद्धृत करके सांत्वना देते थे। परंतु वे ऐसे समय गए जब आसपास के दो चार लोग ही अंतिम यात्रा में जा सकते थे।

बड़ा बेटा राकेश कैनेडा में था। दूसरा सुरेश अस्ट्रलिया और बेटी सुनीता यू. के. में। व्हाट्स एप पर शर्मा जी ने सब को मैसेज दे दिया था। परिस्थितियाँ ऐसी बनीं कि अंतिम संस्कार पर कोई ब्लड रिलेशन पहुँच नहीं पाया और स्थानीय रिश्तेदार भी सरकारी गाईड लाईन के कारण एकत्रित नहीं हो सके।

परंपरानुसार पंडित जी ने शर्मा जी से मिल कर मित्तल साहब की तेरहवीं की डेड फिक्स कर दी और बच्चे अलग देशों से एक ही दिन मिलने वालों को 40 मिनट के लिए र्व्चुअल शोक सभा में शामिल कर लिया गया। उसमें भी मुश्किल से चार–पांच लोग ही बस नजर आए जो अपने ही घर में इधर–उधर ही दिख रहे थे। श्रद्धांजलि के नाम पर बस हाथ जोड़ के आउट हो गए।

शाम के समय तीनों बच्चे जो अब बच्चे नहीं थे, कई बच्चों के बाप बन चुके थे, किसी खास टॉपिक पर बहुत गंभीर चर्चा करने लगे। कुछ देर में दुखद वातावरण ऊँची आवाजों, तानाकशी, आरोपों व प्रत्यारोपों में बदलने लग गया। राकेश अपना पक्ष स्पष्ट करते हुए कह रहा था कि मैं हर महीने अपनी सेलरी में इंडियन करंसी में एक फिक्सड एमाउंट ट्रांस्फर कर देता था ताकि उनको कोई तकलीफ न हो। पापा ने हायर वेजिज पर एक फुल टाइम मेड रखी थी। उनके हर कंफर्ट का मैंनें पूरा ध्यान रखा। सुरेश ने भी अपना पक्ष रखा कि मैं पापा का हालचाल वीकेंड पर फोन पर पूछ लेता था। सुनीता ने ताना मारा, ''पापा तुम दोनों की आपसी लड़ाई से बहुत परेशान रहते थे। मम्मी के जाने के बाद टूट से गए थे। तुम्हारी महारानियाँ इंडिया तो आती जाती थी लेकिन एक दिल्ली से अपने घर वालों से मिलकर और खूब सारी शापिंग करके टाइम कम होने का बहाना लगा कर वहीं से लौट जाती थी। दूसरी अमृतसर से अपने भाईयों की शादियों में भंगड़े पा के वहीं से जहाज चढ़ जाती थी। किसी ने तीन घंटे निकाल कर के चंडीगढ़ आकर पापा का हालचाल लेने का कष्ट किया?मैं तीन साल पहले अपने छोटे–छोटे बच्चों को यू.के, अकेला छोड़ कर पापा के साथ पूरे 15 दिन रही थी। कितने खुश थे पापा! मम्मी बातें करते। हमारे बचपन की फोटो, वीडियों दिखाते। मम्मी के आखरी समय की बातें शेयर करते।''

परिवार में बड़ा होने की हैसियत से राकेश ने समझाने की कोशिश की, चलो हम सबने अपने हिसाब से अपने फर्ज पूरे किए हैं। हम सबके पास वक्त बहुत कम है। परसों मेरी फलाइट है। वर्क फ्राम होम के बावजूद इस कंपनी में छुट्टी लेना एक बहुत बड़ी प्रॉब्लम है। हम तीनों को ही हफ्ते भर में लौट जाना है। सुरेश ने बड़े भाई के समर्थन में सिर हिलाया और मतलब की बात पर आया– पापा ने कोई विल तो बनाई होगी?ये एक कनाल की कोठी है। इसके बारे कुछ तो लिख के गए होंगे। सुरेश की इस बात से राकेश और सुनीता की नम आँखों में कुछ चमकने लगा। अफसोस गायब हो गया। दिमाग वसीयत के इर्द गिर्द घूमने लगा। राकेश बोला, ''पॉश सेक्टर में है। कुछ दिन पहले एक फ्रेंड बता रहा था कि यहाँ प्रापर्टी की कीमतें काफी बढ़ गई। रेट छः करोड़ का चल रहा है। हम में से कोई यहाँ रहेगा। आई डाउट।''

सुरेश ने शंका जताई कि पापा ने कभी मुझसे फोन पर ऐसी किसी बात का जिक्र नहीं किया। शर्मा अंकल को पता होगा। वही इनके साथ आना–जाना रखते थे। राकेश बोला चलो अब रात ज्यादा हो गई है। सुबह अंकल से बात कर लेंगे। तीनों सोने चले गए। परंतु किसी की आँखों में नींद कहाँ?सब अपनी–अपनी उधेड़बुन में लगे रहे। राकेश गूगल पर प्रापर्टी के रेट सर्च करता रहा। सुरेश, डीलरों के नंबर ढूंढता रहा। सुनीता सोचती रही कि कुछ पैसा यहाँ से मिल जाएगा और कुछ डायवोर्स फाईनल होने पर आ जाएगा तो अपनी बच्चों की सेटलमेंट लंदन में ही अच्छी हो जाएगी। सुरेश की चिंता यह थी कि आस्ट्रेलिया में भी अभी तक पी.आर नहीं मिली हैं। जॉब सिक्योर्टी भी कोई नहीं। परमानेंट जॉब नहीं। अपना काम कोई चला नहीं। इकॉनमी में रिसेशन अलग से है। हो सकता है इंडिया ही वापस आना पड़े। अगर इसी कोठी के लिए अड़ जाऊं, तो ये दोनों क्या कर लेंगे?अगर ये कोठी छः में निकलती है तो भी दो करोड़ तो हिस्से आ ही जांएगे। जीरकपुर में 'दो' में अच्छा फ्लैट मिल जाएगा। वापस न भी आए तो रेंट पर दे देंगे।

सुबह शर्मा जी खुद ही उनसे चाय नाश्ते के बारे पूछने आ गए। अंधों को क्या चाहिए–दो आखें। औपचारिकता के बाद राकेश ने पूछ ही लिया अंकल, ''पापा कुछ इस कोठी के बारे कभी आप से बात करते थे?'' शर्मा जी कुछ शांत रहे फिर उन्हें आश्वस्त किया, ''मित्तल साहब तो बड़े दिल वाले थे।''

एक गहरी सांस लेकर आगे बढ़े, ''इससे भी बहुत बड़ा बना गए हैं। तुम सब तैयार हो जाओ। तुम्हें वहाँ ले चलता हूँ तीनों के दिल उछलने लगे। सुनीता कहने लगी, ''पापा को एकबार फोन किया था पर उन्होंने ऐसी किसी सेकेंड प्रापर्टी का जिक्र नहीं किया।'' सुरेश ने आशंका जताई, ''मैं तो वीकली फोन करता था, पापा ऐसा सरप्राइज देंगे......नेवर एक्सपेक्टिड!'' सुनीता ने आशा व्यक्त की–हो सकता है मम्मी का इंश्योरेंस, पी.एफ ग्रेच्युटी वगैरा मिला कर मेरे लिए कुछ खरीद लिया हो। मॉम को मुझ से बहुत लगाव था।''

शर्मा जी ने सबको अपनी सेवन सीटर कार में बैठाया और पी जी आई की ओर चल पड़े। रास्ते में राकेश ने पूछा– ''अंकल! पापा ने न्यू चंडीगढ़ में कुछ इन्वेस्ट किया है या इस अस्पताल के पीछे नयागाँव के पास?शर्मा जी ने बिना कुछ जवाब दिए, गाड़ी पी.जी आई की पार्किंग में लगा दी। सुनीता ने पूछा, ''अंकल यहाँ क्या डैथ सर्टिफिकेट लेना है?'' परन्तु शर्मा जी ने सब को अपने पीछे आने का

इशारा किया। कुछ दूर चल कर सब एनॉटमी विभाग में पहुँच गए जहाँ हेड ऑफ द डिपार्टमेंट ने उनका स्वागत किया। औपचारिकता के बाद डॉक्टर साहिबा सब को एक गैलरी में ले गई। वहाँ मित्तल साहब की एक फोटो लगी हुई थी। उनके इर्द गिर्द कुछ और लोगों की फोटो भी लगी हुई थी।''

शर्मा जी ने रहस्य से पर्दा उठाया, ''बेटा! मित्तल साहब ने जीते जी समाज की सेवा की और जाते–जाते अपनी पूरी बॉडी यहाँ दान कर गए। यही नहीं पूरे शरीर के साथ, ये पूरी कोठी भी पी.जी आई के नाम कर गए हैं। तुम सब उनकी विल के बारे पूछ रहे थे। ये बिल की कॉपी है। ये सुनकर सबके चेहरों पर हवाईयों उड़ने लगी। ऐसे लगा भूकंप में यह कोठी धड़ धड़ा कर धराशायी हो गई है साथ ही सबके सपने भी कांच के घरों की तरह चूर–चूर हो गए हों।

शर्मा जी आगे बोले , ''मित्तल साहब कहते थे कि मेरे तीनों बच्चे फॉरन में...वेल सेटल्ड हैं। इंडिया कोई आना नहीं चाहता। मैं वहाँ जाना नहीं चाहता। कोठी का क्या करेंगे?बेतहर होगा ट्रस्ट बना कर इसमें जनता के लिए एक डायग्नोस्टिक सेंटर खोल दिया जाएँ जहाँ कोई संस्था नो प्रॉफिट नो लॉस पर जनता के स्वास्थ्य के लिए काम करें।''

डॉक्टर साहिबा ने उन्हें सांत्वना देते हुए ढाइस बंधाया, ''आपके पापा जीते जी तो जन कल्याण करते ही थे, जाते–जाते भी दस लोगों को नया जीवन दे गए।'' सुरेश गुस्से में बोला–डॉक्टर साहब! आप कोविड पेंशेट की बॉडी कैसे ले सकते हैं। दिया?डॉक्टर बोली, कौन?दिस इस अंगेस्ट मेडिकल एथिक्स। आपने हमारे पापा का अंतिम संस्कार भी नहीं होने दिया।

डॉक्टर बोली, ''कूल बेटा कूल! किसने कहा... आपके पापा की डेथ कोरोना से हुई। सिर में चोट लगने से हुई थी। ब्रेन डेड हो गया था और ऐसे केस में ही इस मानव शरीर का उपयोग औरों के लिए किया जा सकता है। मिस्टर शर्मा को मालूम था कि उन्होंने संपूर्ण देहदान का फार्म भरा हुआ है और अपनी रजिस्टर्ड वसीयत में भी बड़े साफ तौर पर लिखा है कि मेरे मरने के बाद मेरा शरीर पी.जी आई को दान दे दिया जाए। आप घबराएँ नहीं।'' तभी शर्मा जी ने सब को शांत करते हुए आगे बताया कि हमने पूरे रीति रिवाजों से उनका अंतिम संस्कार किया और उनके पार्थिव शरीर को अग्नि में समर्पित करने की बजाय यहाँ पूरे समाज के लिए समर्पित कर दिया।

डॉक्टर साहिबा फोटो गैलरी की तरफ इशारा करके एक–एक चित्र की बैक्ग्राउंड बताने लगी, ''ये मिस्टर अब्राहम हैं जिन्हें आपके पापा का हार्ट ट्रांस्पलांट किया गया है। आज उनके शरीर में आपके पापा का दिल धड़क रहा है। ये निर्मल सिंह हैं जिन्हें कश्मीर में आतंकवदियों ने पैर में गोली मार दी थी। इनके पैरों में मित्तल साहब के एक पैर की बोन लगाई गई है। ये आज चलने फिरने के काबिल हो गए हैं। और इस लड़की को देखो। कुछ गुंडों ने इसके चेहरे पर तेजाब डाल दिया था। इसकी स्किन ग्राफटिंग चल रही है। ये है पिंटू....इस बच्चे की पटाखे चलाने से दोनों आँखें चली गई थी। आज यह बालक मित्तल साहब की आँखों से पूरा संसार देख रहा है। ये मिस्टर खन्ना हैं।....एक बिजनेसमैन। इनके शरीर में आपके पापा का लिवर प्रत्यारोपित किया गया है। आपके डैडी के कारण इन्हें नया जीवन मिला है। जो बाकी फोटो आप देख रहे हैं, इनमें वो लोग शामिल हैं। जिनमें इस महान आत्मा के कुछ पाटस जैसे पैनक्रियाज, लिगामेंट्स, किडनी, लंग्ज आदि लगाए गए हैं। यही नहीं कुछ दिनों बाद उनका स्केल्टन अनाटमी के विद्यार्थियों के रिसर्च वर्क में काम आएगा।''

अपने पापा के शरीर को ऐसे छिन्न भिन्न होने की कल्पना से ही वे तीनों सिहर गए। शर्मा जी सब के चेहरों पर आए मनोभावों कों भांपतें हुए और उनकी भावनाओं का सम्मान करते हुए मनोबल बढ़ाने लगे, ''मित्तल साहब एक महान व्यक्ति थे। विचारों से ही नहीं कर्मों से भी, वेरी प्रैक्टीकल पर्सन। इस संसार में जो आता है....एक दिन राख हो जाता है या सुपुर्द खाक हो जाता है। शरीर नश्वर है, आत्मा अजर अमर है। भारत तो आदिकाल से देहदान में अग्रणीय रहा है। दधीचि ऋषि ने वृतासुर राक्षस को मारने के लिए अपनी मृत्यु के पश्चात् अपनी अस्थियाँ दान कर दी थी ताकि उनसे बज्र बना कर एक असुर से समाज को मुक्ति मिल सके। आज समाज रस्म क्रिया और शोक सभाओं के बाद दूसरी शोकसभा में व्यस्त हो रहा है परन्तु आपके पापा सदा बहार रहेंगे। जैसे हमारे धर्म में माता के नौ भिन्न–भिन्न स्वरूप हैं वैसे ही मित्तल साहिब के नौ शरीर हैं और नौ के नौ बिल्कुल जीवंत। वे न होकर भी हम सबके साथ नौ रूपों में विद्यमान रहेंगे।
तीनों भाई बहनों के चेहरों पर संतोष का भाव उभरने लगा।''

डाक्टर साहिबा ने उन्हें एक सर्टिफिकेट और तुलसी का एक पौधा उपहार स्वरूप दिया ताकि मित्तल साहब की मधुर यादें सदा हरी भरी रहें और तुलसी के पौधे की तरह उनका शरीर सब को जीवन प्रदान करता रहे।

अगले सप्ताह तीनों वारिस अपने–अपने देश लौट गए। तीनों के हाथें में वसीयत की प्रतियां पापा के पवित्र कार्य की याद दिला रही थी।

लघुकथा

डॉ जयसिंह अलवरी
सिरूगुप्पा, बल्लारी (कर्नाटक)
मो.– 09886536450

R;kx

मोहन जब इस शहर में आया था, तब उसका कोई अपना नहीं था। तंगहाली की स्थिति में वह कई–कई रात भूखा फुटपाथों पर सोया था।

मगर–आज सारा शहर उसका है। जिधर से भी गुजर जाए आदर और सम्मान की झड़ी लग जाती है।

मोहन ने दिन–रात की मेहनत से कामयाबियों के कई गढ़–गढ़े संग सदा परोपकार के कामों में नित्य अव्वल रह के तन–मन–धन से निरन्तर जन सेवा को समर्पित रहा। अपने लिए कभी कुछ नहीं चाह सदा सबके लिए सेवा मनोभाव के द्वार खुले रखे। ऐसी सुन्दर भावनाओं व त्याग समर्पण के भावों ने उसे सबका चहेता और विशेष बना दिया।

कहानी

''करोना.....करोना.....लॉकडाउन''

नीरजा हेमेन्द्र
पडरौना, कुशीनगर (उत्तर प्रदेश)
दूरभाषा– 9450362276

मुख्य शहर से लगभग बारह किलोमीटर दूर यह छोटा–सा गाँव है सेवरही। चालीस–पचास परिवारों का समूह यह गाँव आज कुछ बड़ा हो गया है। सेवरही कृषि प्रधान गाँव है। यहाँ रोजी–रोटी का साधन भी कृषि है। प्रायः सभी परिवारों के पास थोड़ी कम–ज्यादा, अपनी खेती योग्य भूमि है। जिनके पास नहीं है, वे भी किसी बड़े किसान के खेत में मजदूरी के लिए कृषि का ही कार्य करते हैं। बेचालाल का परिवार उन्हीं परिवारों में से एक है जिसके पास अपना खेत नहीं है।

सेवरही और उसके आसपास के गाँवों के खेतों में मजूरी करता है बेचालाल। खेती का मौसम न रहने पर पास शहर में मजूरी करने चला जाता है। प्रतिदिन की मजूरी से उसका परिवार पलता है।

''ये गोपाल के बाबू, तनी ई लकड़िया के कुंदवा (लकड़ी का मोटा टुकड़ा) उठाई के भीतरी ओसारा में रखवाय दीं। बड़ा भारी बा।'' बेचालाल की पत्नी कमली एक लकड़ी के कुन्दे को खींचकर बाहरी दालान से ओसारे में रखने का प्रयत्न कर रही थी। जब उससे न रखा गया तो उसने बेचालाल से कहा।

''राहे द। न घिरियाव। हम आवत हईं।'' बेचालाल ने कहा।

लकड़ी के कुन्दे को दुआर पर छोड़कर कमली भीतर चली गयी। बेचालाल काम पर निकलने वाला था। कमली ने भोर में उठ कर घर के सभी काम कर लिए थे। काम पर ले जाकर बेचालाल के खाने के लिए रोटी भी बना ली थी। डिब्बे में रखना शेष था। रसोई में जाकर कमली ने जस्ते के डिब्बे में कुछ रोटियाँ तथा मिट्टी की छोटी हांडी से गुड़ का एक टुकड़ा रोटी पर रखकर डिब्बा बन्द कर ओसारे में बिछी खटिया पर रख दिया।

लकड़ी के कुन्दे को खींच कर बेचालाल ने ओसारे में रख दिया तथा अंगोछे से हाथ पोंछ लिया। खटिया पर रखे टिफिन को कपड़े के थैले में डाला और साईकिल के हैंडिल पर लटका दिया।

''अच्छा, हम चलत हईं काम पर।'' कमली से कहता हुआ बेचालाल काम पर निकल गया। खर्र...खर्र...घिर्र...घिर्र...साईकिल की आवाज देर तक कमली के कानों में आती रही।...बड़ी पुरान साईकिल है। रोजे पंचर होत है।...कबो बिरेक (ब्रेक) बिगड़त है। रोजे कुछ न कुछ होत रहत है। गोपाल के बाबू गिरीस (ग्रीस) अउर मशीन के तेल के केहर दूसरे दिन साईकिल ठीक करेले। गोपाल के बाबू बतावेलें कि जब ऊ नान्ह रहले तब उनके बाबूजी ई साईकिल चलावत रहले। बाद में बाबूजी ई साईकिल बेचालाल के दे दिहलें। पुरान साईकिल, चलै त केतना चलै। नयी ले ना सकत हैं। नया लेबे के पईसो त चाही ...कमली मन ही मन बड़बड़ा उठी

कमली को फिक्र भी हुई कि यदि ये साईकिल किसी दिन पूरी तरह बिगड़ जायेगी तो गोपाल के बाबू मजूरी करे कईसे जायेंगे?होनी को जवन मंजूर होई। भगवान जी के भरोसे कट रहल बा, अगहु भगवान जी कटईहै....थोड़ी देर चिन्ता कर कमली घर के काम में लग गयी।

बेचालाल के तीन बच्चे हैं। गोपाल सबसे बड़ा आठ बरस का है, उससे छोटा सोहन पाँच बरस का तथा सबसे छोटी पायल ढाई बरस की है, जिसे दुलार से सब पायलिया कहते हैं। घर में तीन बच्चे और दू परानी अपना। पाँच लोगन के खर्चा अउर कमाये वाला एक ही गोपाल के बाबू हैं। येही कारण है कि बरखा–बूनी, हारी–बीमारी छोड़के रोज ही काम पर जाते हैं। ये हाथ बँटाये किन्तु नहीं कर सकती क्योंकि सेवरही गाँव में खेती–किसानी के अतिरिक्त आय का अन्य कोई साधन नहीं है। खेती किसानी का काम अधिकांशतः घर वाले स्वयं ही कर लेते हैं। मजूर नहीं रखते।

''ए गोपाल के माई, तनी ली आव हो बाल्टी में पानी। हाथ–गोड़ धो लीं।'' साँझढले काम से लौट कर बेचालाल ने साईकिल टाटी के भीतर खड़ी की तथा बाहर से कमली को आवाज लगाते हुए कहा।

''बाबूजी आ गईने...बाबूजी आ गईने....'' कहता हुआ सोहन मड़ई से बाहर आ गया।

''माई कहाँ बाड़ी?'' कमली को घर में न देख उसने सोहन से पूछा।

''इनार पर पानी भरे गईल बाड़ी।'' उंगली से सामने कुएँ की ओर संकेत करते हुए सोहन ने कहा।

सामने की गली से दोनों हाथों में भरी बाल्टी लिए कमली चली आ रही थी। कमली ने एक बाल्टी दुआर पर रखा तथा दूसरी बाल्टी भोजन बनाने के लिए मड़ई के भीतर रख दिया।

''फगुआ बीते अबही दू–चार बीतल ना भईल कि एतना गर्मी पड़े लागल।'' बाल्टी भीतर रखकर पसीना पोछती हुई कमली बाहर आई बेचालाल से बोली

''गर्मियों पड़ी, आ पछुआ चली। काम–धाम ठीक से ना सपरी।'' बेचालाल ने कमली की बात का समर्थन करते हुए कहा।

कमली मड़ई में चली गई। दिन ढलने से पूर्व उसे भोजन बना लेना है। एक ढिबरी है। उससे ही घर के बाहर–भीतर के काम होते हैं। यही कारण है कि अँधेरा होने से पूर्व कमली रसोई के काम कर लेती है। शीशी की एक ढिबरी और कमली ने बना रखी है, किन्तु जलती यही एक ढिबरी है। इसका कारण यह है कि कोटदार से मिलने वाने तीन लीटर तेल में पूरे महीने ढिबरी जलानी रहती है। कभी–कभी कोटे पर तेल आने में दो–चार दिन विलम्ब भी हो जाता है। कमली बचत से ढिबरी जलाती है। मड़ई के पिछवाड़े छान कीरसोई में चूल्हा सुलगा कर कमली ने भगोने में दाल चूरने के लिए चढ़ दिया।

जब तक दाल बनेगी तब तक परात में आटा गूँथ लेगी। शाम के भोजन में दाल–रोटी ही बनती है। कमली तीव्र गति से काम कर रही थी। अँधेरा होने से पूर्व वह रसोई के काम समाप्त कर लेना चाह रही थी।

''का हो गोपाल के माई! रोटिया बन गईल का?'' बाहर खटिया पर बैठकर अँगोछे से मच्छर उड़ाते हुए बेचालाल ने पूछा।

फगुआ के बाद आज वह काम पर गया था। शरीर थक गया था। खा–पीकर आराम करना चाह रहा था। पैसे की आवश्यकता इतनी अधिक रहती है कि काम मिले तो वह त्योहार के दिन भी कर ले किन्तु मालिक लोग त्योहार में काम नहीं कराते।

"हाँ, बस हो गईल। दू–चार रोटी अउर डारै का है।" कमली ने कहा।

"ठीक बा रसोई पूरा कई ल।" बेचालाल ने कहा।

थोड़ी देर में कमली थरिया में दाल–रोटी रखकर लाई और बेचालाल को पकड़ा दिया।

"बच्चन के दे देहलू?" बेचालाल ने कमली से पूछा।

"हाँ....हाँ....दे देहली।" कमली ने कहा।

कुछ क्षणों में तीनों बच्चे भी अपनी–अपनी भोजन की थाली लेकर बेचालाल के पास ओसारे में आ गये। बच्चे वहीं भूमि पर बैठ कर भोजन करने लगे। छोटी पायलिया बेचालाल के पास खटिया पकड़कर खड़ी हो गयी। बेचालाल स्वयं भोजन करता जाता तथा दाल–रोटी मसल–मसल कर भोजन का कौर पायलिया के मुँह में भी डालता जाता। सबने भोजन कर लिया। ढिबरी बुझा कर सभी सो गये।

प्रातः उठकर बेचालाल अपनी दिनचर्या समाप्त कर साईकिल उठाकर काम के लिए निकल गया।

"कहाँ जा रहे हो बेचा?" गाँव के इनार पर दातुन–कुल्ला कर रहे रामसरन ने पूछा।

"रोज कमाये–खाये वाला अउर कहाँ जईहै?मजूरी करै जात हईं।" बेचालाल ने रामसरन की ओर देखे बिना हँसते हुआ कहा तथा साईकिल आगे बढ़ा दी।

"अरे...अरे...भईया बेचा ने साईकिल रोक दी। दोनों की बातचीत सुनकर रामसरन के पास दो–तीन लोग और आकर रूक गये।"

"भईया हो, तोहके नाही मालूम बा कि लॉकडाउन लागल बा?" रामसरन ने बेचालाल से कहा।

"लाकडौन...?ऊ का होत है भईया...?" एक नया शब्द सुनकर बेचालाल चिहुँक गया।

"का पुलिस का पहरा लगा है का...?" रामसरन के कुछ कहने से पूर्व बेचालाल पुनः बोल पड़ा। परेशान बेचालाल साईकिल घुमाकर कुएँ के समीप आ गया।

"हम तो काम पर जा रहा हैं भईया। कउनो गलती हो गवा का...?" अभी तक बेचालाल लॉकडाउन का अर्थ समझ नहीं पाया था।

"नाही भईया तोहसे कउनो गलती नाही भवा। देश में एगो बेमारी फैली है जेके करोना कहल जात है। वो ही कारण पूरे देश मा लॉकडाउन लगा है। जो जहाँ है, वहीं रही। सब काम धंधा बन्द रही। कोई केहू के लगे नहीं जाई, तबै ई बेमारी खतम होई।" रामसरन ने पूरी बात समझाते हुए बेचालाल से कहा।

"ई कवन बेमारी हवै भईया काम–धंधा सब बन्द होई गईल।" बेचालाल को अब भी करोना बीमारी समझ में नहीं आ रही थी। वह कुछ–कुछ डरने भी लगा था।

"किरौना कवन बेमारी हवै?काम पर गईला से ई कईसे हो जाई....?" बेचालाल के प्रश्नों के उत्तर किसी के पास नहीं थे। उसे समझाना सबके लिए कठिन हो रहा था।

"साँझी के हमरे दलान में आ जईह। टी.वी. पर देख लीह। सब समझ जईब। अबहीं घरै जा।" रामसरन ने कहा।

रामसरन इस गाँव के समझदार व्यक्ति माने जाते हैं। थोड़ा–बहुत दस्तखत करै लायक पढ़े हैं। गाँव में लोग उनकी बात मानते भी हैं।

अनजाने भय के वशीभूत बेचालाल वापस घर आ गया। साईकिल दालान में खड़ी की। अंगोछे से पसीना पोंछता हुआ अपनी मडई में गया। आँगन में बिछी ईंटे के चट्टे पर बैठी कमली बर्त्तन धो रही थी।

"का हुआ...?काहे लौट आये...?" बाल्टी से पानी उलीच कर हाथ धोकर वह बेचालाल के पास आ गई तथा उसकी साईकिल को ध्यान से देखने लगी। यह सोचकर कि कहीं रस्ते में साईकिल न टूट गयी हो और वह लौट आया है।

"का बताये कुछु डौन (वह लॉकडाउन शब्द भूल गया था) हो गया है। रामसरन भईया बतावत रहें कि तीन हफ्ते तक काम पर नहीं जाना है।" बेचालाल ने कमली को समझाने का प्रयास किया।

"अच्छा?ई का हो गवा?" मुँह बाये कमली बेचालाल की बात सुन रही थी।

रोटी–गुड़ वाला खाने का डिब्बा झोले में से बाहर निकाल कर बेचालाल ने रसोई में रख दिया तथा बाहर दालान में खटिया बिछा कर बैठा गया।

"का हो गोपाल के माई! क दिन के खाये भर के आटा–चाउर बा घर में?" बाहर खटिया पर बैठे–बैठे बेचालाल लॉकडाउन में घर में सबके लिए दो रोटी खाने की चिन्ता कर रहा था।

"आयं...क दिन के?कालही त लउटत बेर दू किलो चाउर, दू किलो आटा, दू किलो आलू, आ तनिक तेल मसाला ले के।"

आईल रहल। ओहि में के थोड़–थोड़ बचल बा।" कमली ने हिसाब जोड़ाते हुए कहा।

"कोटेदार के राशन में से कुछु बचल बा....?" घर में अनाज की सम्भावना की तलाशते हुए बेचालाल ने पूछा।

"नाही, कुछु न बचल बा। फगुआ में चार दिन काम पर ना गईल त ओहि में से खरचवा चलल।" कमली ने कहा।

"हूँ....हूँ...।" बेचालाल को याद आ गया कि कोटदार के यहाँ का राशन तो होली से पहले ही खर्च हो चुका होगा।

तीन हफ्ते काम–धंधा बन्द होने की बात सुनकर बेचालाल का मन व्याकुल हो रहा था। वह उठ कर कोठरी में गया। टाँड़ पर रखी छोटी बकसिया में यह देखने कि उसमें कितने पैसे हैं। घर खर्च के बाद जो भी दो–चार रुपये बचते हैं, उन्हें वह छोटी बकसिया में रख देता है।

कभी पानी बरस जाने के कारण, कभी मेले–ठेले, तीज–त्योहर या कभी हारी–बीमारी के कारण जब कभी वह काम पर नहीं जा पाता तो इन्हीं पैसों से घर का खर्च चल जाता है। बेचालाल ने बकसिया उतार कर देखा। उसमें चार सौ साठ रुपये निकले। चलो इसमें कुछ दिनखर्च चल ही जायेगा। आगे देखा जायेगा। बेचालाल ने संतोष की साँस ली।

बैठे–बैठे किसी प्रकार दिन कटा। शाम को बेचालाल रामसरन के दुआर की ओर चला गया। उनके दुआर पर टी.वी. चल रहा था। जिसे गाँव के लोग घर बैठे देख रहे थे। उसमें करोना नामक बीमारी के बारे में बता रहा था। पूरे देश में लॉकडाउन लगाने की बात प्रधानमंत्री जी कह रहे हैं। सभी लोग जहाँ है, वहीं रहेंगे। जब तक कोई आश्वयक कार्य न हो कोई भी घर से बाहर न निकले, तभी यह बीमारी ठीक होगी।

कार्यालय, फैक्ट्री, दुकानें, ट्रेनें, बसें, ऑटों, टैम्पो, स्कूल–कॉलेज, सिनेमा हॉल, थियेटर, खेल–कूद, बैठक, मीटिंग जहाँ लोगों का जुटान होगा....सब कुछ बन्द रहेगा। टी.वी. में महिला समाचार पढ़ रही थी और बता रही थी कि करोना के कुछ मरीज मिले

हैं जिन्हें अलग–अलग अस्पतालों में भर्ती कराया जा रहा है। टी.वी. बार–बार बता रहा था कि जब तक जरूरी काम न हो घर से बाहर न निकले। समाचार सुनकर बेचालाल को घबराहट होने लगी।

काम किये बिना, मजूरी के पैसे बिना इतने दिनों तक घर कैसे चलेगा?इस बीमारी के बारे में वो पहली बार सुन रहा था। ये कौन–सी बीमारी है करोना, जिसके कारण देश–दुनिया में सब काम–धन्धा बन्द हो गया?सोचकर बेचालाल का मन भयभीत होने लगा।

जैसे–जैसे दिन व्यतीत होते जा रहे थे वैसे–वैसे बेचालाल को इस महामारी करोना के बारे में नयी–नयी बातें सुनाई देने लगी थीं कि इस बीमारी की दवा नहीं है। बस खाँसी, सर्दी, बुखार जैसे लक्षण होते हैं। इस बीमारी की चपेट में आकर इन्सान बच गया तो बच गया, नहीं तो सब कुछ खत्म आदि...आदि।

घर में बैठे–बैठे पाँच दिन व्यतीत हो गये। खाने–पीने, पैसे हर चीज की तंगी से बेचालाल गुजर रहा था कि एक दिन गाँव के लोगों ने उसे बताया कि कोटेदार के यहाँ राशन आ गया है। सरकार की ओर से इस बार कुछ बढ़कर मिलेगा। गाँव के लोगों के साथ पंक्तिबद्ध होकर बेचालाल भी राशन ले आया। इस बार कोटेदार ने सबको दूर–दूर खड़ा कर लाईन बनवाई थी। सबको कुछ बढ़ाकर राशन भी दिये।

घर में बैठे–बैठे दूसरा हफ्ता प्रारम्भ हो गया था। बेचालाल के पास रहे–सहे पैसे भी खत्म हो गये थे। सहसा बेचालाल ने गाँव के लोगों से सुना कि जो लोग रोजी–रोटी कमाने गाँव से बाहर गये थे, वे शहर में काम धन्धा बन्द होने से, खाने–पीने की पेरशानी के कारण अपने–अपने गाँव लौटने लगे हैं। साधन–सवारी कुछ चल नहीं रही है। ये मजदूर भाई चैत की तपती सड़क पर पैदल चल पड़े। बस एक ही धुन है कि किसी प्रकार अपने गाँव अपनों के बीच पहुँच जायें। फिर जीयें या मरें...कोई चिन्ता नहीं।

कभी–कभी शाम को बेचालाल रामसरन के दुआर पर जाकर टी.वी. देख लेता। पैदल चलते–चलते कितने लोग बीमार पर गये, सुनने में आ रहा है कि बहुत से जान से हाथ धो बैठे। बीवी–बच्चों और गृहस्थी की कुछ आवश्यक वस्तुओं के साथ पैदल चलते लोग...मरते लोग..उफ्फ! टी.वी. में मजदूरों की दशा देखकर बेचालाल का कलेजा काँप उठता है।

बेचालाल को अपने भाई ज्योतिलाल की याद आने लगी थी। सत्रह–अट्ठारह वर्ष का उम्र में वह शहर कमाने गया था। उसका गौना हो गया तो पत्नी को भी लेकर शहर चला गया। वहीं एक कमरा लेकर रहने लगा। अब उसके दो बच्चे भी हो गए हैं। बरस में दो बार फगुआ अउर देवाली के परब में घर आता है, तभी भेंट–मुलाकात हो जाती है। बेचालाल के पास फोन नहीं है, इसलिए ज्योतिलाल से बात नहीं हो पाती। आजकल करोना बेमारी अउर लॉकडाउन में न जाने क्या हाल होगा उसका?अभी फगुआ में घर आया था। शहर पहुँचा ही होगा कि दू–चार दिनों में ई आफत आ गयी। न जाने क्या हाल होगा उसका...?

बेचालाल के पास फोन नहीं है, किन्तु ज्योतिलाल के पास है। एक कागज पर लिखकर उसने अपना नम्बर भी दिया था। जिसे बेचालाल ने जतन से रख दिया है।

''सुनत हऊ गोपाल के माई। ज्योतिलाल के हालचाल जाने के बड़ा मन करत बा। उसका फोन नम्बरवा एक कागज पर लिखा रहे, ऊ कहाँ बा?ले आव मिला के फोन कई लीं। बेचालाल ने कमली से कहा।''

''ई ल, हमरी बकसिया में रखल रहे।'' कमली ने अपनी बकसिया के कोने से कागज का एक टुकड़ा निकाल कर बेचालाल को दे दिया।

''हम परकास के दोकान पर जात हईं। अबै ज्योतिलाल के फोन कई के आईब।'' कागज को हाथ में लेते हुए बेचालाल ने कहा।

''ठीकबा, जा।'' कहकर कमली घर के काम में लग गयी।

गाँव में परकास बनिये की दुकान पर बेसिक फोन लगा है। गाँव में जिनके पास फोन नहीं वे परकास की दुकान पर आकर पैसे दे कर फोन कर लेते हैं। परकारस ने नम्बर मिलाकर बेचालाल को दे दिया। नम्बर लग नहीं रहा था।

''भईया हो! फोनवा नाही लागत बा।'' परेशान बेचालाल ने परकास से कहा।

''नाही लगला पर ई नम्बर बेर–बेर दबा दीहल कर लाग जाई। परकास ने रीडायल का नम्बर दिखाते हुए बेचालाल से कहा।''

कई बार प्रयत्न करने पर फोन लगा। कदाचित् नेटवर्क की समस्या रही होगी।

''भईया, राम....राम...। कईसे हो ज्योति?'' बेचालाल ने पूछा।

''राम...राम...भईया। का बताईं भईया...दू हफ्ता से काम नाही बा। मकान मालिक के कमरे का किराया बाकी बा। पईसवा खतम हो गईल बा। का करीं भईया, बड़ी परेशानी में बानी जा हमनी के ईहाँ। खोये–पीये के भी बड़ी दिक्कत होत बा।'' ज्योतिलाल के स्वर में पीड़ा भी थी और विवशता भी।

''ये ज्योति, कउनो तरे चली आव गाँवें। इहाँ मिलजुल के कउनो उपाय कई लीहल जाई।'' बेचालाल ने ज्योतिलाल को सान्त्वना देते हुए कहा।

''कउने तरे आई भईया। कउनो साधन नाही बा साथे काम करे वाले कुछ लोग काल अपने गाँवें जाये के खातिर निकलिहें। उनहीं सब के साथे हमहूँ निकल आवे के सोचत हईं।'' ज्योतिलाल ने कहा।

''ठीक बा छोटे। कउनो तरे घरे आ जइह। परिवार के लोगन के ख्याल रखिह।'' बेचालाल ने कहा।

''ठीक बा भईया राम...राम।'' ज्योतिलाल ने कहा। बेचालाल ने फोन रख दिया।

''केतना पईसा भईल हो भईया।'' बेचालाल ने परकास से पूछा।

''चार रुपया।'' परकास ने कहा।

''हम दुई रुपया ले के आईल बनी। हरदम दुई रुपया पड़त रहे। आज बुझाता ढेर बात होई गईल। दुई रुपया उधार लिख ल। बाद में दे जाईब।'' दो रुपया पकड़ाते हुए बेचालाल ने कहा।

घर आकर बेचालाल ने कमली को ज्योतिलाल के हालचाल से अवगत् कराया। उसे संतोष था कि अपने छोटे भाई से उसकी बात हो गई। भाई का परिवार परेशानी में है, यह सोचकर वह चिन्तित भी था।

दिन व्यतीत होते जा रहे थे। कोटेदार ने इस बार से कुछ बढ़ाकर राशन दिये। उसी से किसी प्रकार ये कठिन दिन कट रहे थे। सुना है कि सरकार ने कोटेदार से कहा था सबको अनाज बढ़ाकर देने के लिए। भाई के लिए बेचालाल चिन्तित रहता। ज्योतिलाल का राशन कार्ड भी तो इसी गाँव का है। उसे तो सरकार की ओर से मिलने वाला राशन भी नहीं मिलेगा। वह तो मात्र कमाने गया था परदेश। उसका

सब कुछ इसी गाँव में है।

पुरखों का दिया यह छोटा–सा घर जिसमें बेचालाल रह रहा है, इसका आधा हिस्सा ज्योतिलाल का भी है। गाँव में रोजी–रोटी ठीक से नहीं है इसीलिए ज्योतिलाल परदेश चलना गया था कमाने। यह सोचकर कि कुछ पैसे कमा कर गाँव वापस आ जायेगा। उसे क्या पता था कि एक दिन ये हाल हो जायेगा कि खाने के लाले पड़ जायेंगे।

''करोना...करोना..ई का है गोपाल के बाबू?सुनत हई कि करोना कउनो नयी देवी हैं जो उपरा गई हैं।'' कमली ने कहा।

''नाही। ई एक परकार के बेमारी हवै।'' बेचालाल ने कहा।

''गाँव में त अउरतें यही बात कहत हैं कि ई देवी हैं। आज संझा के तलईया के किनारे सब अउरतें पूजा कहिहैं। करोना देवी कुपित हो गई हैं। पूजा कईला से प्रसन्न हो जईहैं।'' कमली ने बेचालाल को समझाते हुए कहा। कमली की बात सुनकर दुख के इस महौल में भी बेचालाल को एकदम से हँसी आ गयी।

''नाही, ई बात नाही है। पढ़े–लिखे होशियार लोग कहत हैं कि यह एक परकार के छोटा कीड़ा है जवन दिखाई नहीं देता। वायरल कहत हैं लोग। ई बेमार आदमी के पास गईला से नाक–अउर मुँह के रास्ते दूसरे आदमी के शरीर में चला जाता है।'' बेचालाल ने कमली को समझाने का प्रयत्न किया।

''अच्छा ई बात है।'' कमली ने ऐसे कहा जैसे वो करोना के बारे में सब कुछ समझ गयी हो।

किसी प्रकार हफ्ते–दस और बीत गये। घर में पैसों की तंगी होने लगी थी। बेचालाल से सबसे पूछा करता कि लॉकडाउन कब हटेगा.... लॉकडाउन कब हेटगा?किन्तु कोई कुछ न बताता। एक–एक पैसे की तंगी हो गयी थी। बेचालाल काम पर जाना चाहता था।

दो–चार दिन बीते। एक दिन रामसरन भईया मिले गये।

''सुन हो भईया बेचालाल। तीन हफ्ते का लॉकडाउन बढ़ गया है।'' रामसरन ने बेचालाल से कहा। रामसरन जानता था कि बेचालाल रोज ही पूछा करता है। इसलिए उसने लॉकडाउन बढ़ने की बात बेचालाल को बता दी।

रामसरन की बात सुनकर बेचालाल घबरा गया। तीव्रगति से वह घर की ओर भागा।

''काहे हाँफ रहे हो?का हुआ....?'' बेचालाल को परेशान हाल घर में प्रवेश करते देख कमली ने कहा– ''सुना है लॉकडाउन बढ़ गया है। अब घर में दाना–पानी कैसे चली।'' बेचालाल सिर पकड़कर बैठ गया।

बेचालाल व्याकुल होकर गाँव इधर–उधर घूमता रहता। उसका मन नहीं लग रहा था। खाली बैठे–बैठे समय नहीं कट रहा था। शहर में काम कर रहे मजूरों की घर वापसी की बात लोगों से पता चल रही थी। चैत की चिलचिलाती धूप में घर के लिए पैदल चल पड़े हजारों मजदूरों की दशाके बारे में सुनकर बेचालाल का कलेजा फटा जा रहा था। टी.वी., रेडियो बता रहा कि पैदल चल रहे भूखे–प्यासे लोग मूर्छित होकर सड़क पर गिर–गिर जा रहे हैं। अनेक काल–कलवित भी हो गये। सबकी दशा बहुत ही खराब है।

परदेश में रह रहे अपने छोटे भाई ज्योतिलाल के बारे में सोचकर उसकी चिन्ता बढ़ती जा रही थी। न जाने वह किस हाल में होगा?आज फिर उसका फोन नम्बर लेकर बेचालाल परकास की दुकान की ओर चल पड़ा। परकास ने नम्बर मिलाकर फोन बेचालाल को पकड़ा दिया।

''हँ भईया, ठीक कुछ नाही है। पईसा नाही रहा। यही कारण किराये का कमरा छोड़ दिया। गाँव के लिए निकल पड़े हैं। एक दिन पूरा होई गवा कुछु पेट में गया नहीं। न बच्चों ने, न हमने कुछ खाया है। बस, किसी तरह गाँव पहुँच जायें।'' बेचालाल ने पूछा तो ज्योतिलाल ने बताया।

''कईसे आ रहे हो छोटे?'' बेचालाल ने पूछा।

''भईया सामान से लदा एक डाला मिला है। वोही में परिवार सहित हम किसी तरह बैठ गये हैं। ई डाला आधा रास्ते तक ही पहुँचायेगा। अतने दूरी के बहुत पईसा ले लिहिस। आधे रस्ते पहुँच के देखब कि आगे का मिलत बा। अच्छा भईया राम–राम। फोनवा के चार्जिंग खतम हो रहल बा। पुरान फोन बा। अब रखत हई। आपन अउर परिवार के ध्यानरखिह भईया।'' ज्योतिलाल ने कहा और फोन कट गया।

''परकास भईया, पुरान दू रुपया बाकी रहे, अउर आज के चार रुपया।'' ''मिला के छौ रुपया काट ल।'' बेचालाल ने दस का नोट बढ़ते हुए परकास से कहा।

...हे भगवान ज्योतिलाल कउनो तरै घरे आ जावैं। सुनत हई कि जवान मजदूर लोग रोजी–रोटी खातिर बाहर गये हैं, काम धन्धा बन्द हो जाने के कारण उ सब अपने गाँव लौट रहे हैं। जो साधन पाये हैं, उसी साधन से चल पड़े हैं। लोग कह रहे हैं कि बहुत लोग रस्ते में खतम हो गये।....सोचता हुआ बेचालाल घर चला आ रहा था। अपने भाई की सही–सलामती घर वापसी के लिए मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था।

करोना और लॉकडाउन के विचित्र माहौल में दिन व्यतीत हो रहे थे। गाँव के लोग इस भयावह बीमारी के बारे में अजीब–अजीब बातें बताते रहते। गाँव के कुछेक घरों में टी.वी. है। वे सब टी.वी. में बताई जा रही खबरों की चर्चा चौराहे–चौपालों पर करते। बेचालाल अचम्भे से उन लोगों की बातें सुनता।

लॉकडाउन में दिन बीत रहे थे। न काम न धन्धा। पाई–पाई, दाने–दाने के लिए लोग तरस रहे थे।

''अरे सचिनवा, कहाँ से आवत है रे?'' चाय–समोसे वाले छेदी हलुवाई के लड़के को खाली ठेला लेकर आते देख बेचालाल पूछ पड़ा।

''तरकारी बेच के।'' सचिन ने कहा। उसके ठेले में दो बची हुई लौकी पड़ी थीं।

''चाय–पानी के दोकान बन्द बा। कईसे घर चले, ऐही खातिर बाप कहे हैं कि ठेला में तरकारी घूमा के बेच लीहल कर। सरकार की ओर से तरकारी बेचे के छूट है न।'' सचिन ने कहा।

प्रतिदिन नये–नये कौतूहल, नयी–नयी बातों की जानकारी होती जा रही थी। दिन कटते जा रहे थे। चार–पाँच दिन और व्यतीत हो गये।

''भईया केवाड़ खोल...भईया केवाड़ खोल।'' आधी रात से ऊपर हो गया था। बेचालाल गहरी नींद में सो रहा था। कोई जोर–जोर से दरवाजा पीट रहा था। आवाज सुनकर बेचालाल की आँख खुल गयी। वह समझने का प्रयत्न कर ही रहा था कि कौन है?

''अरे बाप रे! ई त ज्योतिलाल के आवाज है।'' बेचालाल हड़बड़ा कर उठ बैठा। तुरन्त कमली को आवाज लगा कर जगाया

तथा शीघ्रता से दरवाजा खोल दिया।

भाई और उसके परिवार की फटेहाल दशा देखकर बेचालाल रो पड़ा। उसने तुरन्त खटिया बिछा दिया जिस पर ज्योतिलाल अपने परिवार के साथ बैठ गया। ज्योतिलाल के पैर में मोटा कपड़ा बँधा था।

"चप्पल कहाँ है ज्योति?" वह पूछ बैठा।

"चप्पल टूट गया था भईया। गोड़ में छाला पड़ गया था। चल नहीं पा रहे थे। इनहूँ के गोड़ घवाय गया है।" ज्योतिलाल ने घूँघट निकाल कर खटिया के दूसरी ओर बैठी अपनी पत्नी की ओर संकेत करते हुए कहा। ज्योतिलाल ने अपने पैर से कपड़ा हटा कर बेचालाल को दिखाया।

"अरे बाप रे! हमरे भाई के गोड़ त बहुतै घवा गया है।" ज्योतिलाल के दोनों पैरों के तलवों की खाल उतर चुकी थी। वह बड़ी कठिनाई से चल पा रहा था।

"गर्मी के कारण रोड तप रहा था। हम सब आठ कोस पैदल चलकर आये हैं। भईया।"
कहते–कहते ज्योतिलाल फफक पड़ा।

"अच्छा तुहन लोग नहा–धो के भोजन कर के आराम कर। "बेचालाल ने कहा।

बेचालाल की पत्नी ने सबको रोटी–चोखा बनाकर खिलाया। कई दिनों बाद ज्योतिलाल के परिवार ने भरपेट भोजन किया। अगले दिन गाँव के प्रधान ने कहलवाया ज्योतिलाल का परिवार चार दिनों तक सरकारी स्कूल में रूकेगा। ज्योतिलाल अपने परिवार के साथ क्वारंटीन होने अपने परिवार के साथ सरकारी स्कूल में चला गया। पैर में लगाने के लिए गाँव के दवाई के दुकान से मलहम खरीदकर बेचालाल ने भाई को दे दिया।

घर में बैठा बेचालाल सोच रहा था कि ई करोना एतना खतरनाक बेमारी है?हमरे भाई के परिवार के का दशा हो गई है?बच्चों को देखकर कलेजा मुँह को आ रहा है। कैसे झँवरा गये हैं दोनों बच्चे?दुबले इतने कि शरीर हड्डी की ढाँचा रह गया है।

चार दिनों के पश्चात् ज्योतिलाल का परिवार घर आ गया। बेचालाल को संतोष हुआ कि इन्हें करोना नहीं है। बेचालाल ने सुना है कि करोना की बेमारी में लोग बच नहीं पाते। भगवान जाने क्या सच है. ...क्या झूठ?

ज्योतिलाल के पास एक भी पैसा नहीं था। पैसे तो बेचालाल के पास भी नहीं बचे थे। दो–चार रुपये थे, वो भी खरच हो गये। कोटेदार के यहाँ से जो राशन सरकार की ओर से बँटवाया गया था, उसी से किसी प्रकार दोनों का परिवार दो–दो निवाले खा रहा था। बेचालाल को चिन्ता हो रही थी कि ये राशन कितने दिन चलेगा।

"तू चिन्ता न कर भईया। तीन–चार दिन के अउर बात बा। लॉकडाउन हट जाई त हूमहू इहाँ मेहनत–मजूरी कई लेब। अब हम शहर नाही जाईब। सुना है कि शहर से गाँव आवै में भूख–प्यास, बीमारी के मारे कई मजूर लोग रस्ते में आपन प्राण त्याग दिये है।" बेचालाल को परेशान देख ज्योतिलाल ने ढाढ़स बँधाते हुए कहा।

ज्योतिलाल मन ही मन सोच रहा था कि यदि उसके पास पैसे होते तो वह भईया को अवश्य दे देता। इस गाढ़े बखत में वह और उसका परिवार भी भईया के ऊपर बोझ बन गये हैं। लॉकडाउन के खत्म होने के पश्चात् अब यहीं मजूरी कर वह भईया की सहायता करेगा। इस कठिन समय में भईया ने उसे बहुत बड़ा सहारा दिया है।

ज्योतिलाल दरवाजे पर बैठा सोच रहा था....लॉकडाउन खत्म होने में अब तीन–चार दिन और शेष है। उसके बाद वह भी भईया के साथ काम पर जायेगा। सब कुछ ठीक हो जायेगा।

धीरे–धीरे किसी प्रकार तीन दिन और व्यतीत हो गये। बस अब एक दिन और बचा है लॉकडाउन का।

आज अन्तिम एक दिन और व्यतीत हो ही गया। दूसरे दिन बेचालाल दिशा–मैदान कर के घर की ओर लौट ही रहा था कि गाँव के उमेस मिल गये।

"गजब होई गवा भईया.... ।" उमेश ने बेचालाल को देखते ही कहा।

"काहे?का हो गवा भईया...?कहे इतना घबराये हुए हो?" बेचालाल ने पूछा।

"लॉकडाउन फिर से बढ़ गवा। अबहीं दू हफ्ता अउर हम लोग काम पर नाही जा सकत हैं।" मुँह बाये बेचालाल उमेश की ओर देख रहा था।

"ई बात कहाँ सुने भईया...?" बेचालाल को उमेश की बात पर विश्वास नहीं हो रहा था।

"तोहके अबहीं ले नईखे पता?सब जगही रेडियो बता रहा है। टी.वी. में भी समाचार बोल रहा है।" उमेश ने कहा।

"अरे बाप रे! ई त बड़ा मुश्किल भईल। कईसे का होई हो भईया?" बेचालाल के मुँह से सहसा निकल पड़ा।

बेचालाल की बात सुनकर उमेश कुछ न कह सका वह स्वयं भी तो इसी कठिनाई से गुजर रहा है। उमेश चला गया। बेचालाल घर की ओर चल पड़ा।

...अरे बाप रे! हमार अउर हमरे भईया के परिवार के पेट कईसे भरी। हमरे सब के जीवन कईसे चली। अरे बाप रे ई का हो गवा. ..?कईसे हम सब के गुजर–बसर होई। करोना त दूर बा, हम सब त भूखे मर जाईब...मन ही मन सोचता हुआ बेचालाल घर की ओर चला जा रहा था।

"अरे बबुआ ज्योतिलाल, सुनत हउअ। लॉकडाउन फिर से बढ़ गवा हो।" घर पहुँच कर बेचालाल ने ज्योतिलाल से कहा। ज्योतिलाल दुआर पर बैठा साईकिल ठीक कर रहा था, जिससे वह और भाई बेचालाल मजूरी करने जा सकें।

साईकिल ठीक करना छोड़ ज्योतिलाल हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ।

"का?ई का कहत हौ भईया?ई कहाँ सुनल?" ज्योतिलाल ने आश्चर्यचकित होते हुए पूछा।

बेचालाल की आँखों के सामने अँधेरा छाने लगा। वह चक्कर खाकर गिरने ही वाला था कि ज्यातिलाल ने आगे बढ़कर उसे पकड़ लिया। दलान में किनारे खड़ी चारपाई बिछा कर उस पर बेचालाल को बैठा दिया। दोनों हाथों से सिर पकड़कर बेचालाल चारपाईपर बैठ गया। वहीं चारपाई के पास जमीन पर ज्योतिलाल भी सिर पर हाथ रखकर बैठ गया। सांय–सांय करते वातावरण में उदासी और निस्तब्धता व्याप्त हो गयी थी।

कहानी

द मेकिंग आफ द नेताइन

डॉ पूरन सिंह
राजस्थान,
मो.– 9828763953

चाचा जी की नेतागिरी अभी जिला स्तर की ही थी लेकिन थी बहुत ही प्रभावशाली। जिले में लोग उनका बहुत मान–सम्मान करते थे तो महत्त्वपूर्ण निर्णयों में भी उनकी सहमति–असहमति जरूरी रहती थी। धीरे–धीरे वे जिला स्तर से ऊपर उठने की कोशिश में थे और सफल होते भी दिखाई दे रहे थे।

मुझे नेतागिरी से सख्त चिढ़ तब भी थी जब मुझे इसकी कुछ भी समझ नहीं थी और आज भी है जब इसके अधिकांश पहलुओं को मैं बारीकियों से समझ सकता हूँ और इसके पीछे की कूटनीति और घिनौनेपन को भी जान सकता हूँ।

चाचा जी नेता होते हुए भी इंसान हैं अभी मानवीयता और संवेदनाएँ शेष हैं उनमें। और शायद यही कारण है कि वे राजनीति में बहुत ज्यादा नहीं उखाड़ पाए। कल आए लौंडे–लौंडियाँ उनसे आगे निकल गए और इन्हीं में से एक हैं विमलेश कुमारी। विमलेश कुमारी लौंडिया तो नहीं हैं, हाँ अधेड़ भी नहीं हैं। चाचा जी की उम्र के लोगों को मोहित करने में पूर्णरूपेण सक्षम हैं वे।

होली पर घर गया था मैं। पिताजी नहीं रहे। पहली होली थी उनकी। परिवार के सभी सदस्यों को पैत्रिक घर पर होना था इसलिए मेरे अलावा और सब भी घर पर ही थे।

मैं अपने घर के पास में ही किसी काम से अपने साथियों से मिलने गया था। लौटकर आया तो घर में हड़कम्प मचा था, 'मैडम आने वाली हैं, मैडम आने वाली हैं।' चाचाजी खूब उत्साहित थे।

'कौन सी मैडम आने वाली है।' मैंने पूछा था।

'विमलेश कुमारी जी आने वाली हैं।' चाचाजी ने बताया था।

मेरे मस्तिष्क में कुछ उभरने सा लगा और ऐसा लग रहा था मानों मैं उन्हें जानता हूँ या फिर यह नाम कुछ सुना–सुनाया सा लगा था। तभी मैंने सोचा, होगी कोई नेताइन। मुझे क्या लेना। चाचाजी के पास तो तमाम आते ही रहते हैं। होंगी उन्हीं में से कोई। लेकिन इतना सोच लेने से पीछा छूटने वाला तो नहीं था। तभी चाचाजी के पास तो तमाम आते ही रहते हैं। होंगी उन्हीं में से कोई। लेकिन इतना सोच लेने से पीछा छूटने वाला तो नहीं था। तभी चाचाजी न जाने कहाँ से आए और पूरे घर को सचेत करते हुए बोले थे, 'बस....एक या दो मिनट में, मैडम पधारने वाली हैं।'

सच में हुआ भी ऐसा ही कुछ ही पलों में लाल रंग की स्कार्पियों घर के दरवाजे पर आकर रूकी। उसमें से पहले तो दो गनमैन निकले जिनके हाथों में रायफलें आग उगलने को तैयार थीं। फिर तीन आदमी और निकले जो तुलनात्मक रूप से आदमी कम जिंद ज्यादा नजर आ रहे थे। जब वे गाड़ी से बाहर निकले थे तो लगा था कि गाड़ी की खिड़की उखाड़नी पड़ेगी और सबसे बाद में विमलेश कुमारी अर्थात् मैडम उतरीं। चाचाजी हाथ बांधे खड़े थे उनके स्वागत में। उन्होंने अर्थात् मैडम जी ने बड़े ही सलीके से साड़ी बांध रखी थी। रेशम की क्रीम कलर की साड़ी ऊपर से पार्टी का स्कार्फ डाल रखा था। उन्होंने चप्पल की एड़ी बहुत ऊँची नहीं थी। बाल खूब शऊर से सजे हुए। पीछे से मैंने देखा तो मैं ललियाने लगा था। मैडम जी ने स्कार्पियों से उतरते ही चाचाजी के बड़ी श्रद्धा से चरण स्पर्श किए। चाचाजी ने आशीर्वाद दिया लेकिन ध्यान रखा कि सिर से हाथ छूने न पाए। मुझे आशीर्वाद देते हैं तो पूरा सिर हिलाकर रख देते हैं। माथा अलग से चूमेंगे सिर पर हाथ फिराएंगे और आँखों भी भर आएंगी, 'मेरे भइया की अकेली डरैया (अकेला बेटा) है।' कहते–कहते मुझे भी रूला देते हैं। खैर मेरे चाचाजी जैसा चाचा हर किसी को मिले।

'कैसे है सर।' मैडम ने कहा और जैसे ही सिर ऊपर किया तो मैं चीख पड़ा था, 'विमलेश, तुम।'

चाचाजी, मैडम के साथ आए दोनों गनमैन, तीनों राक्षस टाइप के उनके चमचे, ड्राइवर और घर के सभी लोग मुझे देखने लगे। मैडम ने मुझे देखा और सिर्फ इतना ही बोली थी, 'मोहित तुम।'

'हाँ, मैं। भई ये....ये सब क्या है।' मैंने पूछा था। दोनों गनमैन जो थोड़ी देर पूर्व के मेरे व्यवहार पर अपनी रायफलें संभाल रहे थे, अब सहज थे।

'तुम जानते हो मैडम को।' चाचाजी का आश्चर्य मिश्रित स्वर मेरे कानों में घुल गया था।

'हाँ, चाचाजी मैं जानता हूँ विमलेश को... और विमलेश का ऐसा क्या है जो मुझसे छिपा हो....लेकिन इतना वैभव....इतना जलजला।' कहकर मैं उनकी ओर देखने लगा था। मेरे बार–बार विमलेश–विमलेश कहने पर चाचा जी कुछ परेशान से लगे थे। मैंने भांप लिया था और फिर विमलेश की ओर मुखातिब हुआ था, 'कैसी हैं मैडम जी।'

'ठीक हूँ। कहती हुई वे बैठक में चाचाजी के साथ चली गई थी। उनके साथ आए साथी भी वहीं बैठे गए थे। और कुछ ही पलों में कस्बे के कई नामी गिरामी लोग मैडम के दर्शनामृत पीने के लिए इकट्ठे हो गए थे जिनमें सुनीला चिक भी था–सुनीला चिक बकरे और मुर्गे की मीट बेचा करता था। किसी बात पर एक ग्राहक से पैसों के पीछे झगड़ा हो गया था। इसने उसके पेट में, उसी छुरी से जिससे बकरे की मीट काटता था, घुसेड़ कर उसकी आतें बाहर निकाल लीं थीं। बाद में पकड़ा गया। मुकद्दमा चला। सबूत और गवाहों की कमी के कारण सुनीला चिक छूट गया था। पूरा कस्बा उसके नाम से थर–थर कांपता है। रमकिशना अहीर जिसे कौन नहीं जानता जिसने मिढ़इया चमार का बीस बीघा खेत दबा लिया था, मिढ़इया ने आने चूतड़ों तक की ताकत लगा दी, एक कूड़ जगह वापिस नहीं करवा पाया जबकि उसका बेटा बड़ा अफसर है। रनुआ गुप्ता जिसने पूरे गुप्ता मार्केट पर कब्जा कर लिया, क्या पुलिस, क्या अधिकारी सब उसी के घर आकर दावत मरोड़ते हैं।

अब किसे–किसे गिनाऊं एक से बढ़कर एक छुटभैए लेकिन आदमी कोई नहीं चाचाजी उन्हीं सब के बीच में बैठ गए थे। अम्मा, चाची और कुछ लोग मैडम के लिए चाय–पानी का इंतजाम कर रहे थे। बैठक में बातें कम अट्टाहास ज्यादा सुनाई दे रहा था। बीच–बीच

में, मैडम जी 'जिन्दाबाद–जिन्दाबाद' या फिर 'मैडम जी तुम संघर्ष करो हम तुम्हारे साथ हैं' या फिर 'जब तक सूरज चांद रहेगा... मैडम तेरा नाम रहेगा', जैसे नारों से बैठक गूंज उठती थी।

मैं ऊपर वाले कमरे में अकेला बैठा अतीत में झांक रहा था....

तब मैं एम ए अंग्रेजी की प्रथम वर्ष में था। कस्बे में कोई डिग्री कॉलेज नहीं था। जिले में था डिग्री कॉलेज। वहीं रहकर मैं पढ़ रहा था। एक दिन कॉलेज में ही मिल गई थी विमलेश कुमारी। विमलेश कुमारी पढ़ने में थोड़ी सी ठीक थीं। होशियार नहीं थीं। उस दिन फीस जमा करनी थी। काउंटर पर फीस जमा करते लड़के–लड़कियों की भीड़ से विमलेश कुमारी दूर खड़ी थीं। मैंने देखा एक कमजोर और निस्साह सी लड़की दूर खड़ी है। मैं उनके पास पहुँच गया था, 'फीस जमा करनी है क्या।'

'जी' बहुत धीमी सी आवाज में बोली थी विमलेश कुमारी।

'तो इतनी दूर खड़े होने से फीस जमा हो जाएगी।' मैंने पूछा था।

'नहीं'

'फिर'

'मुझे भीड़भाड़ से डर लगता है और फिर.....।' आगे की बात नहीं कह पाई थीं कमलेश कुमारी।

'और फिर का क्या मतलब।' मैंने पूछा था।

'मेरे पास पूरे पैसे भी नहीं हैं।'

'कितने कम है।'

'तीन सौ सड़सठ।'

'लाइए जो भी हैं। मुझे दे दो और ये फार्म भी दे दो। मैं जमा कर देता हूँ। तुम मुझे यहीं मिलना। कहीं चली नहीं जाना।' कहकर मैंने फार्म और पैसे विमलेश कुमारी के हाथ से ले लिए थे।

काउंटर पर मैंने अंदर जाकर क्लर्क के पास पैसे जमा कर दिए। शेष पैसे मैंने अपनी जेब से भर दिए थे और लौटकर उन्हें फार्म और पैसे दे दिए। मैं जैसे ही चलने को हुआ तो विमलेश कुमारी बोली थी, 'आपके पैसे मैं जल्दी ही लौटा दूंगी।'

'ठीक है जब हो जाएँ तब देख लेना।' इतना कहकर मैं चला आया था। मेरे साथी मेरा इंतजार कर रहे थे।

'चीज उतनी खराब भी नहीं है।' दीपक बोला था।

'मिल जाए तो लेने में कोई बुराई भी नहीं है।' कौशल भारद्वाज के लिए हर लड़की बस भोग की वस्तु थी।

'शादीशुदा है चूतिए। खसम है उसका। तुम्हारे जैसों को घास नहीं डालने वाली।' सुशील बोला था।

'मोहित के लिए कुछ भी कठिन काम नहीं है।' संतोष हमेशा मुझे चढ़ाने पर रहता था।

'अच्छा देखता हूँ क्या कर पाता हूँ।' मैं बोला था।

'क्या कर पाता हूँ का क्या मतलब....साले अकेले मत खा लेना...गांडू.....बांटकर खाएंगे। ने अकेले ही लपेट जाओं।' सुशील ने सब की तरफ देखते हुए, आँखे नचाते हुए कहा था।

'सभी को बराबर मिलेगी।' मेरे कुछ कहने से पहले ही संतोष ने घोषणा कर दी थी।

और कुछ देर कॉलेज में रूकने के बाद हम लोग अपने–अपने घरों को चले आए थे।

तभी एक दिन मैं बाजार में सब्जी ले रहा था। मैं वहाँ अकेला रहता था। खुद ही बनाता–खाता था। बनाता–खाता क्या अधिकांश यार दोस्तों के यहाँ खाना पीना रहता था लेकिन जिस दिन कोई जुगाड़ नहीं बन पाता उस दिन हाथों से ही थोपना पड़ता था।

'आलू कैसे दिए है।' सब्जी वाले से किसी महिला का स्वर मिठास में सराबोर था।

'सात रुपया किलो भौंजी।' सब्जीवाले ने बताया था और मैंने उस महिला की ओर देखा था,

'अरे आप।'

'और आप .....सब्जी खरीद रहे हो।.....ये....ये मेरे हसबैण्ड है।' वे बोली थीं। मैंने देखा एक बहुत ही सुन्दर और स्वस्थ्य व्यक्ति बच्चे को गोद में संभाले उनके पीछे खड़ा था।

'नमस्ते भाई साहब।' कहकर मैंने हाथ जोड़ दिए थे।

'जी नमस्ते।'

सब्जी वाले से अपने–अपने सामान लेकर हम लोग एक तरफ खड़े होकर बातें करने लगे थे.....

'मैंने आपको बताया था इन्हीं की वजह से उस दिन मेरी फीस जमा हो पाई, नहीं तो....। 'मैंने उन्हें पूरी बात नहीं बोलने दी थी और बीच में ही टपक पड़ा था, 'नहीं तो क्या...ये तो मेरा फर्ज था.... अगर मैं इस तरह परेशानी में होता तो क्या आप मेरी मदद नहीं करतीं।' मैं बोला। 'क्यों नहीं करती।' उन्होंने कहा और साथ ही एक प्रश्न भी कर दिया था, 'आपने उस दिन अपना नाम नहीं बताया था... आप शायद जल्दी में थे इसीलिए।'

'मेरा नाम मोहित है।'

'मेरा विमलेश कुमारी और मेरे हसबैण्ड का राम कुमार।' इस तरह हम लोगों के नामों के आदान–प्रदान का कार्य संपन्न हो गया था।

'आपका बेटा बहुत सुन्दर है।' उनके बेटे के गाल को पुचकारते हुए मैं चलने को हुआ ही था कि उनके हसबैण्ड बोले थे, 'भाई साहब, घर आइए कभी तब अच्छे से बैठकर बातें होंगी। और आपके पैसे....विमलेश बता रही थी।'

'देखिए पैसों की बात करेंगे तब तो मैं बिल्कुल नहीं आऊंगा...।' मैंने वैसे ही कहा था जबकि मैं चाहता था कि किसी तरह उनके घर जाने को मिले।

'अच्छा ठीक है पैसों की बात नहीं होगी.... अब खुश।' विमलेश कुमारी ने सहज भाव से कहा था और अपने घर का पता भी बता दिया था।

मैं अगले दिन ही धमक पड़ा था उनके घर पर। घर में वे अकेली ही थीं। खाना बना रही थी। मुझे देखकर बहुत खुश हुईं। आवश्यक औपचारिकताओं के पश्चात मैं चलने को हुआ तो उन्होंने हाथ पकड़कर कहा था, 'पहली बार आए हो खाना खाए बिना नहीं जाने दूंगी।'

मुझे क्या आपत्ति होती। मुझे घर जाकर स्टोव और बर्तनों से जूझना पड़ता। मैं खुशी–खुशी तैयार हो गया था। खाना–खाने के बाद बड़ी देर तक बातें होती रही थीं। एक ही बार में उन्होंने अपनी पूरी जीवन–व्यथा परोस दी थी मेरे सामने....।

बहुत ही गरीब परिवार से थीं वह और उनके पति। पति बेहद नेक दिल और सच्चे इंसान। खुद भी पढते और इन्हें भी पढाते

थे। रात में या फिर छुट्टी के दिनों में मेहनत मजदूरी भी कर लेते थे। विमलेश कुमारी औरतों के पेटीकोट, ब्लाउज सिल कर कुछ पैसे इकट्ठे कर लेती थीं। शादी हुई थी तब उनकी सास थीं जो शादी के कुछ दिनों पश्चात भगवान के घर चली गई थी आज तक लौटी ही नहीं।

मैंने जब उनकी पूरी व्यथा सुनी तो मन में संभालकर रखी बात को निकाल कर फेंक दिया था और 'आप चिंता न करें। अब हम भी आपके साथ हैं। दुख–सुख मिलजुलकर बांट लेंगे।' कहकर चलने लगा तो बोली थीं विमलेश कुमारी, 'आप पर न जाने क्यों बहुत विश्वास लग रहा है।'

मैं चला आया था।

अगले दिन कॉलेज पहुँचा और दोस्तों को सारी बात बताई थी।

सबसे पहले संतोष चिल्लाया था, 'सुनो...भाइयों....सुनो....श्री श्री 1008 श्री मोहित जी महाराज, विमलेश कुमारी से राखी बंधवाकर आए हैं। अब सभी लोग अपना–अपना, काटकर....अब किसी को कुछ नहीं मिलने वाला।' 'यार आप लोग समझने की कोशिश तो करो...वे मुसीबत में हैं...।' मैं इसके आगे कुछ बोलता कि सुशील भिनभिनाया था, 'चूतिए ये राखी भी बंधवा लेता... और काम भी निकालवा दे या.....वैसे भी वह शादीशुदा है....और कुछ अटक भी जाए तो नाम तो उसके ठोंकू का ही होगा।'

मेरे सभी दोस्त सुशील के मुँह की ओर देखने लगे थे मानों वह पियरें बर्नियर हो। दरअसल सुशील हमेशा मूर्खों जैसी बातें ही करता था इस बार उसकी बुद्धिमानी पर सभी खुश थे

'हाँ यार....ये ठीक रहेगा। कोई रिस्क भी नहीं। शादीशुदा के साथ ये मजे तो रहते ही हैं। लड़िका खेले यार को नाम पिया को होय। भई वाह....।' कहते हुए दीपक मेरे पास आया और मेरे गाल चूमते हुए बोला था, 'यार इसे हाथ से मत जाने देना। हम सभी लोग मिल बांटकर खाएंगे' वैसे भी तुम बहिन बनाकर।

'अच्छा ठीक है। मैं वायदा तो नहीं कर रहा लेकिन कोशिश पूरी करूंगा। अब खुश।' मेरे दोस्त मेरी इस बात पर खुश हो गए थे।

फिर तो ये हुआ कि मैं विमलेश कुमारी के घर खूब आने–जाने लगा था। मजे की बात तो तब हुई जब उन्होंने न जाने कैसे एक रिश्ता भी निकाल लिया और उस रिश्ते के हिसाब से उनके पति और मैं मामा–फूफा के हिसाब से भाई–भाई बन गए थे। अब मैं उन्हें खुले आम भाभी कहने लगा था।

मेरे दोस्त मेरी भाभी कहने पर बहेद खुश था और इतना ही नहीं वे सभी भी भाभी कहने लगे थे विमलेश कुमारी से। समय भागा था या कहें कि उड़ा तो फिर उड़ता ही गया। एम.ए. प्रथम वर्ष के पेपर हुए विमलेश कुमारी अर्थात् भाभी की मेरे साथियों ने जान लगाकर मदद की। उन्हें नकल कराने से लेकर विश्वविद्यालय में नंबर बढ़वाने और मार्कशीट लाने तक कोई कसर नहीं छोड़ी थी। वे खूब अच्छे नंबरों से पास हुई। मेरे थर्ड क्लास के नंबर आए थे जिस पर मेरे साथियों ने मुझे खूब गालियाँ बकीं.....साले कुत्ते....हरामी.....टॉपर वाला थर्ड क्लास आदमी अब अगर तूने भाभी जी की.....।'

न जाने फिर क्या हुआ मुझे जैसे मैं खिसिया गया होऊं।

विमलेश कुमारी मुझे अब किसी बात के लिए मना नहीं करती थी। मैं जो कहता वही करतीं। उनके पति को किसी बात पर कोई आपत्ति नहीं होती थी। मैं कितने ही बार खाना बनाते समय या नहाकर आने पर उन्हें पीछे से पकड़ लेता तो वे कुछ नहीं कहती।

मेरे लिए किसी भी बात की मनाही नहीं थी और यही बात मेरे साथियों को मैंने बता दी।

'तो कब का रहा प्रोग्राम।' संतोष चौबीसों घण्टे घोड़े पर सवार रहता था।

'कल का।' मेरे मुँह से कब निकल गया था मुझे पता ही नहीं चला।

और अगले ही दिन मैंने विमलेश कुमारी को घर बुला लिया था। संतोष चारपाई के नीचे छिप गया था। दीपक टांड़ के ऊपर जाकर घुस गया। वे आयी थीं। अकेली। खूब अच्छी लग रही थीं। मैंने उन्हें चारपाई पर बैठा लिया था और उतावला हो रहा था। तभी तो बोली थीं वे, 'क्या हुआ आज कुछ ज्यादा ही उतावले हो रहे हो। मैं कहीं भागी नहीं जा रही।' बस इसके आगे मैंने उन्हें बोलने नहीं दिया था। और.....और...उसी चारपाई पर.....विमलेश कुमारी और मैं.....। अभी मैं पूरी तरह निपट भी नहीं पाया था कि चारपाई के नीचे छिपा संतोष आ गया था, 'मैं भी' कहता हुआ बिना किसी के उत्तर की प्रतीक्षा किए विमलेश कुमारी से... । मैं अलग खड़ा था। संतोष अभी ठीक से....कि ऊपर टांड पर चढ़ा दीपक कूद पड़ा था, 'मैं क्या यहाँ चूतिया दिखाई दे रहा हूँ सालो।' और फिर दीपक भी....।

विमलेश कुमारी ने उस दिन कुछ भी नहीं कहा था। वे मेरी चालबाजी को अच्छी तरह समझ गई थीं। ये सब ड्रामा था। उन्होंने मेरी तरह देखा था। मैं आँखें नीची किए अपराधी बना खड़ा था। तब उन्होंने सिर्फ एक ही बात कहीं थी, 'मोहित तुम पर बहुत बड़ा विश्वास था मुझे.....तुमने ठीक नहीं किया.....अब देखो.....आगे क्या हो.....।'

मैं अपने आप पर घिन कर रहा था और मन ही मन अपने आपको नीच, कमीना कहे जा रहा था। शायद उन्होंने भांप लिया था। वे उठी थीं। मुझे बहुत प्यार और अपनत्व से चारपाई पर बैठा लिया था। फिर बोली थीं, 'तुम्हारे तो और भी साथी होंगे उन्हें कब बुलाओगे। अब ढोंगे मत करना। मैं आ जाऊंगी।'

न जाने कितनी लड़कियों और औरतों को मैंने मिलबांटकर खाया होगा। कभी कोई शिकायत नहीं रही। कोई प्रायश्चित नहीं रहा मन में। इस बार लगा था कि फांसी लगाकर मर जाऊँ या फिर कॉलेज से घर आते समय रास्ते में पड़ने वाली रेल की पटरी पर सो जाऊँ। मगर देखो....मैं ऐसा कुछ भी नहीं कर पाया।

मेरे दोनों साथी पहले ही चले गए थे। शाम गहराने लगी थी। उन्हें उनके घर छोड़ने को चलने लगा था मैं कि वे बोल थीं, 'कहाँ जा रहे हो।'

'आपको, आपके घर तक छोड़ने.....कहीं कोई गलत आदमी मिल गया तो....।' मेरे होठ बजे थे। उन्होंने मुझे रोक दिया था मानों कह रही हों आपसे ज्यादा गलत आदमी अब कहाँ मिलेंगे, मोहित।

विमलेश कुमारी अकेली ही घर चली गई थीं। मैं उस रात सो नहीं सका था। और अगले दिन ही, मैंने अपना सारा सामान बांधा। अपने दोस्तों और विमलेश कुमारी को बताए बिना ही अपने घर लौट आया था।

'अब नहीं पढ़ोगे मोहित।' पूछा भी था चाचाजी ने।

'नहीं चाचा जी। अब फाइनल तो मैं यूं ही चुटकी बजाकर पास कर लूंगा....चाचाजी अब नौकरी करूँगा।' मैंने अपनी बात चाचाजी के सामने रखी थी।

चाचाजी समहत हो गए थे। कड़ी मेहनत की। जमीन, आसमान एक कर दिया। पहली बार परीक्षा दी। पास हुआ फिर साक्षात्कार दिया और चयनित होकर नौकरी हासिल कर ली लेकिन एक काँटा सा कसता रहा। एक हूक सी उठती रही। विमलेश कुमारी को भुलाने और याद करने की कोशिश करता रहा और इसी में आज तक का समय निकाल भी दिया। और आज देखो, समय ने कैसी करवट ली कि वे..... ।'

अभी मैं सोच ही रहा था कि मेरे कमरे के सामने विमलेश कुमारी अपने पूर्ण वैभव और जलजले के साथ खड़ी थीं। उनके पीछे वहीं दोनों गनर और मेरे चाचाजी थे।

'सर मैं थोड़ी देर के लिए मोहित जी के पास बैठना चाहूँगी। अगर आप आज्ञा दें।' चाचाजी कैसे मना करते। उन्हें तो गर्व हो रहा था कि मैडम उनके भतीजे से स्वयं मिलने आई थीं। वे नीचे चले गए थे। विमलेश कुमारी ने अपने दोनों गनरों की ओर देखा तो वे भी नीचे चले गए थे। अब कमरे में सिर्फ मैं और विमलेश कुमारी ही थे।

मैं आज भी आँखें नीची किए बैठा था। उन्होंने ही मेरा चेहरा ऊपर करते हुए कहा था, 'अब बैठने के लिए भी नहीं कहोगे।'

'जी......हाँ.......जी जी बैठिए।'

'अभी प्रायश्चित पूरा नहीं हुआ मोहित।' धीमी लेकिन रौबदार आवाज में बोली थीं वे।

मैं शांत। मानो तालाब में पानी ठहर गया हो।

'कैसी हो।' औपचारिकता का प्रथम पृष्ठ मैंने खोला था।

'जिंदा हूँ।'

'तुम कुछ नहीं जानते।'

'......... ।'

'कहाँ छोड़ा था मुझे?किस चौराहे पर?....कहाँ जाती मैं?क्या करती?.....कभी जानने को कोशिश की?....कितना जीई?.....कितना मरी?.....एक बार तो पूछा होता......?तुमने तो सिर्फ दोस्ती निभाई.....मेरे बारे सोचा.....?' वे लगातार प्रश्न किए जा रही थीं।

'इतने सवालों का जवाब एक साथ मैं कैसे दूँ। एक–एक करके पूछो।' मेरे बंद होंठ खुले थे, 'मैं माँफी के लायक तो नहीं हूँ लेकिन हो सके तो मुझे।' इतना कहकर मैंने उनके दोनों हाथ अपने हाथों में भर लिए थे तभी अचानक मुझे ऐसा लगा था। किसी ने मेरे कमरे में कुछ किया हो जैसे किसी ने कैमरे से रोशनी की हो। ये बात विमलेश कुमारी ने भी महसूस की थी।

'नहीं ऐसे नहीं करते....मैं जान गई थी। उस दिन....उस दिन तुम कितने दुखी थे। तुमने एक अच्छे दोस्त की तरह दोस्ती निभाई थी लेकिन तुम मुझे बिना बताए ही शहर छोड़ गए इसका दुख अखरता रहा। तुम्हें क्या लगता कि मैं जानती नहीं थी कि तुम दिल्ली में नौकरी कर रहे हो। मैं जानती थी कि तुम बड़े अफसर हो गए हो। मन भी करता था तुमसे मिलने का लेकिन रोक लेती थी। मैं तो बदनाम हूँ ही कहीं मेरी बदनामी की छांव तुम पर भी न पड़ जाए।' मैंने देखा था उनमें आज भी वही संवेदनशीलता और अपनत्व था। वे इतनी बड़ी नेताइन होकर अभी भी वही फीस जमा करने वाली, दूर खड़ी विमलेश कुमारी ही थी।

'अच्छा एक बात बताओं।' मैंने अपनी पूरी शक्ति लगाकर कहा था।

'बस एक ही बात पूछोगे।' आँखों में वहीं अपनत्व और हिलोरें मार रहा था।

'भाई साहब कहाँ है।'

'भगवान के पास चले गए।'

'क्या बकवास कर रही हो।'

'मुझ पर यही चार्ज लगा है।'

'तुम ऐसा नहीं कर सकती।'

'क्यों, क्यों नहीं कर सकती ऐसा?.....जब तुम मुझ पर अपने दोस्त च....ढ़ा....सकते हो तो मैं क्यों नहीं कर सकती।' इस बार वे कमजोर नहीं थीं।

'उसके लिए मैंने आपसे क्षमा मांग ली है।' मैं विनम्र था।

'बार–बार एक ही बात मत दोहराओं।' वे बोली थी।

'अच्छा बेटा कहाँ है। क्या कर रहा है।'

'लखनऊ में है एम.ए. कर रहा है.....अंग्रेजी से।'

'और उन्होंने ऐसे देखा था मुझे मानो कह रही हो तुम्हारे ही रास्ते पर ले जा रही हूँ उसे लेकिन तुम्हारी तरह, नहीं...... ।'

अभी हम बातें कर ही रहे थे कि चाचा जी ऊपर आए थे मेरे कमरे में, 'मैडम.....मैडम जी....लोग इंजतार कर रहे हैं।'

'जिन्हें जल्दी हो, वे चले जाएँ..... मुझे टाइम लगेगा।' चाचाजी सकपकाते हुए वहाँ से नीचे उतर गए थे।

'तुम्हारे चाचा जी भी ना।' बोली थीं वे। 'बहुत सीधे और सच्चे हैं मेरे चाचा जी।' मैंने उनके वाक्य को पूरा करते हुए कहा था।

'ठीक वैसे ही जैसे तुम।'

'क्या मतलब।'

'कुछ नहीं बस ऐसे ही।' वे चुप हो गई थी।

'अच्छा छोड़ो इन सब बातों को। अब बताओं कहाँ इतनी गरीबी और कहाँ ये.....ये सब चमत्कार कैसे हो गया...।' मैंने पूछा तो वे मुझे एकटक देखती हुई बोली थीं.....तुम्हारे जाने के बाद मैं टूटने लगी थीं। शून्य में ताकती रहती। तभी एक दिन तुम्हारे भइया ने पूछा था, 'मोहित की याद आ रही है।'

'नहीं तो।' मैं सकपका गई थी।

'तो फिर।'

'कुछ भी तो नहीं।'

'तुम तो झूठ भी नहीं बोल पाती विमलेश....मैं सब जानता हूँ। तुम्हें क्या लगता है मैं बच्चा हूँ।' बोले थे तुम्हारे भइया।

'क्या जानते हो तुम।'

'यही कि तुम और मोहित....मोहित और तुम।' मुझे उनकी इस बात पर दुखी होना चाहिए था लेकिन मैं खुश थी कि चलो ये ज्यादा कुछ नहीं जानते।

और उसी रात मैंने देखा था वे हमारे पास नहीं थे। रात में ही न जाने कहाँ चले गए थे। सुबह पुलिस आई थी मेरे घर। 'रेल की पटरी पर एक लाश मिली है। उसकी जेब से ये वोटर आई डी भी मिला है।'

'मैंने देखा तो आँसू नहीं आए थे मेरे। सूखी वीरान सी आँखें लिए मैं चली गई थी।

तुम्हारे भइया हमें छोड़कर बहुत दूर निकल गए थे। इतने बड़े संसार में, मैं अपने मासूम बेटे का साथ लड़ने को प्रतिबद्ध थी अब। मेरी दोनों मुटि्ठ्याँ खाली हो गई थीं। मुझे तो न मेरा प्यार मिल पाया था न पति और न बेटा था जिसके साथ जीवन जीने की ठान ली थी मैंने।

'तुमने वह घर देखा था जब तुम मेरे घर आते थे तो वहाँ मेरे घर की तरफ जो गली मुड़ती है वहीं उसी नुक्कड़ पर एक बहुत बड़ी कोठी है' वे मुझे याद दिलाने लगी थीं। मैं भी कोशिश कर रहा था, 'हाँ–हाँ थी तो......किसी बिल्डर की कोठी थी शायद।'

'बस, उस बिल्डर ने मेरा सहारा दिया।'

पति का शोक कितने दिन मनाती। बेटे और अपने पेट के आयतन को भरने के लिए फड़फड़ाने लगी थी और एक दिन उसी के घर पहुँच गई थी, 'साब'

'जी'

'मैं खूब पढ़ी लिखी हूँ आपसे सहारा चाहती हूँ। आप जो भी कहेंगे। करूँगी।' मैं जानती थी बिल्डर के पास मेरे लायक क्या काम होगा लेकिन मेरे पास वह सबकुछ तो था ही जिसे हर मर्द आई मीन टु से, नर (पुरुष) चाहता है।

'क्या काम लूंगा आपसे मैं।' बड़ी देर तक वह नौटंकी करता रहा फिर सिर खुजलाते हुए बोला आप ऐसा करो हिसाब–किताब का काम देख लेना। देख लेंगी।'

'जी साहब।' मैंने सहमति दे दी थी।

उसके यहाँ बारे के न्यारे होते थे। मैं पूरी ईमानदारी एवं निष्ठा से सब काम निपटाने लगी। वह मुझसे बहुत खुश था। तभी एक दिन मैं ऑफिस में शाम को काम खत्म करके अपने घर जा रही थी कि वह बोला था, कुछ थोड़ा सा हिसाब नहीं मिल रहा आप रूक जाओगी थोड़ी देर के लिए।'

मैं जानती थी उसका कौन सा हिसाब नहीं मिल रहा है। मैं रूक गई थी। मैं हिसाब–किताब सही करने का दिखावा कर रही थी कि वह पीछे से आ गया था और मेरे बालों में अपने हाथों से कंघी करने लगा था।

'आइए। यहाँ नहीं। वहाँ...... उस सोफे पर ठीक रहेगा......वहाँ तुम्हें भी परेशानी नहीं होगी।' मेरा इतना कहते ही उसकी आँखें फटी की फटी रह गई थीं। वह नर्वस था लेकिन हाँ उस दिन के बाद वह मेरा दीवाना हो गया था। और उस दिन के बाद वह जब भी इशारा करता मैं खुशी से तैयार हो जाती थी। जिसका परिणाम यह हुआ कि उसने जब अस्पताल के सामने बहुत बड़ी बिल्डिंग खड़ी की तो उसमें एक फ्लेट मुझे भी दिया था। मैंने उसके साथ विश्वासघात नहीं किया। और इतना कहकर वह मेरी तरफ देखने लगी थी।

'क्या मतलब' मैं बोला था।

'नहीं, कोई मतलब नहीं। जस्ट ऐसे ही।' उन्होंने आगे के पृष्ठ खोले थे। उस दिन एक बात मेरी समझ में अच्छी तरह बैठ गई थी कि चाहे पुरुष कैसा भी हो, उसकी यात्रा स्त्री के साथ यहीं से शुरू होती है और यहीं जाकर खत्म हो जाती है।' मैं उस कंस्ट्रक्टर के साथ अब हिसाब–किताब देखने के साथ–साथ उसके साथ साइट पर भी जाने लगी थी। उसका काम भी सीखने लगी और धीरे–धीरे मैंने उसका सारा काम सीख लिया था। तभी मैंने उससे कहा था 'सर एक छोटा सा काम मुझे भी दिलवा दो प्लीज।' मेरी इस बात पर वह सहमत हो गया था। और उसने मुझे काम दिवला दिया था जिसे मैंन पूरी ईमानदारी और नेकनीयती से पूरा किया। काम पूरा होने पर पहली बार मैंने पचहत्तर लाख रुपय एक साथ देखे थे। उस कंस्ट्रक्टर ने कहा भी था, 'सारे तुम्हारे हैं विमल।'

मैंने भी कहा था उससे, 'नहीं सर, आप हाथ उठाकर जो भी दे देंगे वही लूंगी।'

उसने एक पैसा भी नहीं लिया था। सबके सब मुझे दे दिए थे।

बस उन्हीं पैसों से मैंने ठेके लेने शुरू कर दिए थे। अब तो यह स्थिति हो गई थी कि मैं जो भी टेंडर भरती। दूसरे का टैंडर पास ही नहीं होता। मैं अच्छी तरह जानती थी कि टेंडर कौन पास करेगा?कौन निकालेगा?कहाँ क्या होगा?कब होगा और कैसे होगा?मुझसे बात बनेगी या फिर उसे नया माल चाहिए?ज्यादातर का तो मैं अपने आप से ही काम चला देती थी। कोई–कोई जो नया होता था जिसे नई–नई चीजों की आदत होती उसके लिए नई चीज भी हाजिर कर देती थी।

देखते ही देखते लाखों करोड़ों की मालकिन बन गई मैं लेकिन एक चीज कभी नहीं भूली और वह वे फीस के तीन सौ अड़सठ रुपए। अगर वे तीन सौ अड़सठ रुपय न लेती तो शायद....।' इतना कहकर वे अपना माथा पकड़कर बैठ गई थीं।

'मैंने आपसे मांफी मांग ली है।' मैंने उनके दोनों हाथ माथे से हटाते हुए कहा था।

'मांफी मांग लेने से अपराध की परिभाषा थोड़े ही बदल जाती है....खैर।' उन्होंने आगे के पृष्ठों को उलटना शुरू किया था, 'अपने वो चौराहे के पास वाली जगह देखी है वहीं मैंने बहुत बड़ी कोठी बनवाई है और उसी कोठी के उद्घाटन के समय तुम्हारे चाचा जी अपने 'वरिष्ठ लोगो' को लेकर आए थे मेरे पास, 'आज जिले में इनकी कोई टक्कर नहीं है।' कहकर मेरा परिचय करावाया था। और उसी दिन, उसी समय मुझे पार्टी का जिला अध्यक्ष नियुक्त कर दिया गया था।

मैं पार्टी के लिए काम करती रही। खूब पैसा लुटाती रही। और देखते ही देखते मुझे विधानसभा चुनाव में विधायक का टिकट मिला। मैंने विरोधी दल की अपनी महिला प्रतिद्वंद्वी की जमानत जब्त करवा दी थी।

'अरे हाँ मोहित एक बात तो रह गई बतानी। बहुत मजे की है सुनो तो...तुम्हें तो जरूर मजा आएगा।' वे हंस–हंसकर लोटपोट हुई जा रही थी। तभी तो मैंने कहा था, 'अब बताओगी भी या हंसती ही रहोगी।' हाँ सुनो, जब मुझे पहली बार विधायक का टिकट मिलना था तब तुम्हारे चाचा जी ही मुझे प्रदेश अध्यक्ष के 'मुँह में दाँत नहीं और पेट में आंत' नहीं थे। हाथ कांप रहे थे। पसरे पड़े थे मसंद पीठ से लगाए। मैं उनके पास ही बैठ गई थी।

'अच्छा तो आपको टिकट चाहिए क्या नाम बताया आपने।' अपने पोपले मुँह से बोले थे प्रदेश अध्यक्ष।

'जी, विमलेश कुमारी।'

'हाँ, विमलेश कुमारी तुम जीत पाओगी।' और इतना

कहते–कहते उन्होंने अपने कंपकंपाते हाथ बढ़ाए और कहने लगे थे, 'अब कुछ होता नहीं है।' मन में तो आया था कि कह दूँ, 'दद्दू, तो काहे को मरे जा रहे हो। तुम्हारी बेटी से भी छोटी होऊँगी, कमीने।' लेकिन कह नहीं पाई थी सिर्फ इतना ही बोली थी, 'कोई बात नहीं.....।' बस उसी दिन मेरी टिकट पक्की हो गई थी।

सारा क्रेडिट तुम्हारे चाचाजी को गया था। वह दिन है और आज का दिन, मैं एकछत्र राज कर रही हूँ अपने विधान सभा क्षेत्र में। इस बार फिर चुनाव है। मेरी टिकट पक्की है क्योंकि अध्यक्ष अभी भी वही बूढ़े बाबा ही हैं। लेकिन तुमसे एक बात कहूँगी। तुम मुझे भुला मत देना। फिर वे मेरे दोनों हाथ पकड़कर बोली थी, एक काम करो न। नौकरी छोड़ दो। पैसा के अंबार लगा दूँगी मैं तुम्हारे समाने.....अच्छा सही बताओ.....मैं तुम्हारी पत्नी जैसी नहीं लगती....हाँ एक कमी है मुझमें और उसमें वह सिर्फ तुम्हारी ही पत्नी है और मैं न जाने कितनों की।'

'अच्छा अब तुम चुप रहो। तुम्हें यहाँ तक और इस स्थिति तक पहुँचाने वाला मैं और सिर्फ मैं ही हूँ। देखता हूँ भगवान मुझे मांफ करता है या नहीं...कर देता है तो ठीक है नहीं तो......।' मैंने आसमान की ओर देखा था।

'नहीं तो क्या।' वे तपाक से बोली थीं। तभी चाचाजी की आवाज आयी थी, 'मोहित तुम्हारी चाची बुला रही है। मैडम से कहो आकर खाना खाएँ।'

'तुम्हारे चाचाजी भी ना।' विमलेश कुमारी बोली थी।

हम दोनों नीचे चले आए थे। बाद में विमलेश कुमारी अपने लश्कर के साथ लौट गई थी।

हमारे आते ही चाचाजी और कोई एक आदमी उसी कमरे में जिसमें मैं और विमलेश कुमारी बैठे थे, गए थे और बड़ी देर में वापिस आए थे।

बाद में विमलेश कुमारी का फोन आया था, 'देखा मोहित..... तुम कहते थे तुम्हारे जैसे चाचा भगवान सब को दे....जानते हो उन्होंने क्या किया।' मैं कुछ बोलता कि वे आगे बोली थीं, 'तुमसे बाद में बात करती हूँ दूसरे फोन पर बहुत जरूरी कॉल है।' मैं उन्हें 'सुनो–सुनो' ही कहता रहा था तब तक फोन कट गया था।

मैं थक गया था सो टी.वी खोलकर बैठ गया। विमेलश कुमारी और मेरी अंतरंग बातें टी.वी पर एंकर चीख–चीखकर बताए जा रही थी–कैसे पहुँची विमलेश कुमारी फर्श से अर्स तक। स्त्रीत्व को शर्मशार करती एक महिला विधायक का सच। पूरी नारी जाति पर कलंक है विमलेश कुमारी। अब सत्तारूढ़ पार्टी से नहीं मिलेगा टिकट विमलेश कुमारी को। यही है उनका यथार्थ......प्रदेश की राजनीति में जबरदस्त मोड़। कुछ शरारती तत्त्वों ने विमलेश कुमारी के बेटे का अपहरण कर लिया है। संभावना व्यक्त की जा रही है कि ये वही लोग हैं जिनके बारे में......।'

खबर के साथ ही विमलेश कुमारी का आँसू बहता चेहरा था, 'नहीं....नहीं ऐसी बात नहीं है ये वे लोग नहीं है ये सारी साजिश रामखिलावन बाबू का है.....कल मैं उन्हीं के घर गई थी। उन्होंने ही हमारा वीडियों लीक किया है। बाद में एक छोटी सी बाइट और थी विमलेश कुमारी की जिसे काटपीटकर दिखाया जा रहा था जिसमें उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा था,

'अगर सच उगलने पर आयी तो न जाने कितने धुरंधर नंगे खड़े दिखाई देंगे।' फिर वे रोने लगी थीं, 'माननीय प्रदेश अध्यक्ष महोदय से प्रार्थना है कि मेरे बेटे को उनसे मुक्त करवाएँ और मेरे चाहने वालों से भी प्रार्थना है कि वे धैर्य बनाए रखें।'

मैं बार–बार यही सोच रहा था कि विमलेश कुमारी मेरे चाचाजी के बारे में झूठ बोल रही हैं। मेरे चाचाजी इतनी नीच हरकत नहीं कर सकते।

मुझे गुस्सा आ रहा था और मैं चाची–चाची चीख रहा था। चाची अपने कमरे में नहीं थीं। मैं उन्हें ढूंढ़ रहाथा कि अचानक कुछ फुसफुसाने की आवाज मेरे कानों में पड़ी थी, '.....हमने बहुत ही सावधानी से कैमरा वहाँ छिपा दिया। अच्छा किया। अब कहाँ जाएगी बचकर साली....लेकिन यार है बहुत चालू....अच्छा तुम एक काम करो करूआ को लखनऊ में कहो कि बचकर रहे। विमलेश कुमारी का बेटा बचना नहीं चाहिए।'

मैंने सुनी तो मानो मेरे कान के पर्दे ही फट गए हों मैं उल्टे पैरों लौट आया था। आवाज चाचा जी और उसी आदमी की थी जो विमलेश कुमारी और मेरे नीचे चले आने के बाद बड़ी देर तक ऊपर कमरे में बने रहे थे।

बस फिर क्या था एक घण्टा भी नहीं बीता था कि चाचाजी और उनके साथियों को हथकड़ियाँ पहना दी गई थीं। पूरे शहर में आक्रोश था। सभी चाचाजी के लिए मुर्दाबाद के नारे लगा रहे थे। पुलिस लोगों को तितर–बितर करने में जुटी थी।

चाचाजी के प्रति मेरे मन में जो श्रद्धा थी वह बिल्कुल समाप्त हो चुकी थी। मैं चाची से कह रहा था, 'देखिए चाची, चाचाजी की नीचता, बेचारी का बेटा ही किडनेप करवा लिया।' चाची भी दुखी थीं।

मैंने गाड़ी निकाली और थोड़ी देर में विमलेश कुमारी के घर पर उन्हें सांत्वना देने पहुँच गया था। वे घर पर ही थीं। मुझे देखकर खिल गई, 'आ गए तुम?'

'हाँ। अब कैसे करोगी। बेटे का तो किडनेप हो.....।' मैं दुखी हो रहा था।

'विमलेश कुमारी आग है, मोहित। तुम्हारे चाचा ने जिस आदमी को कहा – ''करुआ मेरे बेटे की किडनेपिंग कर ले जाना और इलैक्शन के बाद ही छोड़ना। ध्यान रखना ये बात बेटा भी न जान पाए।'' 'वे बहुत सहज थीं। और अगर उसने तुम्हारी बात न मानी तो... .?और यदि वह बिक गया तो....?इतना भयानक खेल मत खेलो विमलेश.....।' मैं परेशान था

'अच्छा आओ मेरे साथ।' और वे मुझे अपनी कोठी के सबसे नीचे वाले कमरे में ले गई थीं जहाँ किसी का भी पहुँचना संभव नहीं था। वहाँ एक बच्चा आया के साथ बहुत प्यार से खेल रहा था।

'ये किसका बच्चा है।' मैं बोला था।

'ये उसी आदमी का बेटा है जिसने मेरे बेटे को किडनेप किया है। मेरा मतलब करूआ का। अगर मेरे बेटे को कुछ हुआ तो इस बच्चे को बहुत कुछ हो जाएगा।' और मेरी तरफ ऐसे देख रही थीं जैसे कुछ हुआ ही न हो।

मुझे पहली बार, उन्हें देखकर डर लगा था।

विमर्श

कब्र से उठती इन्सानी रूहों की आवाज

दिनेश कुमार पाल
(शोध छात्र)
बैरमपुर, कौशाम्बी, 212214

सभागार में घुसते ही एक मरे हुए व्यक्ति का शव और उसके ऊपर माला–फूल चढ़ा हुआ था, उसकी आँखों का लाल रंग देखकर बहुत से व्यक्ति डर गए, इस नाटक के माध्यम से रंगमंच में एक नया प्रयोग देखने को मिला, हालाँकि नाटक के वर्कशॉप में इस तरह की गतिविधियाँ कराई जाती हैं ताकि अभिनेता ऐसी परिस्थितियों से सहज हो सके। इस प्रकार के नाटक को देखने के लिए अभिनेताओं के साथ–साथ दर्शकों को भी माइन्डली प्रिपेयर रहना होगा, ताकि रंगकर्मियों के साथ–साथ दर्शक भी उनके अभिनय के साथ जुड़ सके और नाट्य कथा को अच्छे से समझ सके और समझ विकसित कर सके।

अवेधेश प्रीती की कहानी हमजमीन का नाट्य रूपांतर अजीत बहादुर द्वारा किया गया और यह नाटक अजीत बहादुर के निर्देशन में ही एस्ट्रा ऐन ऑर्गनाइजेशन की प्रस्तुति में इन्टीमैट थिएटर इलाहाबाद के द्वारा मंचित किया गया यह नाटक गाँधी जी के 64वें शहादत दिवस की संध्या पर खेला गया। यह नाटक 30 जनवरी 2021 दिन शनिवार को मंचित किया गया। इस दिन गाँधी जी की शहादत दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस नाटक का कलेवर बहुत ही विस्तृत है और जमीनी भी है। अवधेश प्रीत की कहानी हमजमीन का नाट्य रूपांतरण के अजीत बहादुर ने समसामयिकता को जोड़ते हुए किया, नाटक दंगा प्रभावित स्थानों की मार्मिकता को बयां करता है।

फूट डालो राज करो कि राजनीति ने मानवीयता को हर बार शर्मसार किया है और ये शायद कोई नई बात नहीं है, जो आज भी बदसतूर जारी है। नाटक हमजमीन दो ऐसे चरित्रों की कहानी है जो किसी गड्ढ़े में दंगा प्रभावित स्थानों से लेकर फेके गए हैं। दंगा होने का कारण क्या है?दंगा होने की स्थिति में इंसान का अवचेतन दिमाग चेतन दिमाग पर कैसे भारी पड़ जाता है?और कोई किसी को जिंदा जला सकता है या जान से मार सकता है?कैसे साम्प्रदायिक सौहार्द की धज्जियाँ उड़ाने में सफल होकर लोग खुश हो जाते हैं?कैसे भीड़ हिंसा में तब्दील हो जाती है और लोकतंत्र को नुकसान पहुँचती है, ऐसे बहुत सारे प्रश्नों को चिह्नित करता है। इस पर चर्चा करने की प्रथा को बनाने में नाटक हमजीमन काफी मदतगार रहा है, इस सवाल को संस्था एक्स्ट्रा ऐन ऑर्गनाइजेशन फिर लोगो के बीच ला खड़ा किया है, नाटक हमजमीन के माध्यम से। नाटक हमजीन के माध्यम से साम्प्रदायिक सौहार्द को बनाने में और पारदर्शी संवाद स्थापित करने में संस्था प्रयासरत है।

इस नाटक को देखने से पहले मैं बहुत ही संशय की स्थिति में था, कि नाटक कैसा होगा?कहीं मेरा समय जायज न हो जाए लेकिन नाटक देखने के बाद लगा की अगर मैं नाटक को नहीं देखता तो अपने जीवन की बहुत कीमती चीज को छोड़ देता इस नाटक को फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित देखा जा सकता है। ''फ्रायड के अनुसार, कला और धर्म, दोनों का उद्भव अचेतन मानस की संचित प्रेरणाओं और इच्छाओं से ही होता है। दमित वासनाएँ जब उदात्त रूप में अभिव्यक्ति पाती हैं, तो साहित्य और कला को जन्म देती हैं। साहित्य, कला, धर्म आदि सभी को फ्रायड इन्हीं संचित वासनाओं और प्रेरणाओं से उद्भूत मानता है।'' (हिन्दी आलोचन की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या–266)

इस नाटक को आज के समसामयिकता से जोड़ कर देखा जा सकता है, जहाँ आज जीवित इंसान कुछ बोलने को तैयार नहीं है, जो बोल नहीं पा रहे हैं और ए.सी. वाले कमरे में अपने–अपने घरों में बैठकर गमले ऊगा रहे हैं। कुछ बोलना नहीं चाहते, उनको लगता है कि वह बोल देगें तो सत्ता के विपक्ष में चले जाएगें और उसका उनको लाभ नहीं मिलेगा बोलने की चुप्पी को तोड़ने के लिए तैयार नहीं है। बोलने की चुप्पी कब्र में उनका दर्द है जो मरा हुआ है, उसका दर्द है। एक मरा हुआ व्यक्ति अपनी चुप्पी तोड़ने के लिए तैयार है, लेकिन एक जीवित व्यक्ति तैयार नहीं है। 'पहल' के 100 वें अंक में मंगलेश डबराल की कविता 'यथार्थ' इन दिनों' की पंक्ति है–

''एक मरा हुआ मनुष्य इस समय
जीवित मनुष्य की तुलना में कहीं ज्यादा कह रहा है।
उसके शरीर से बहता हुआ रक्त
शरीर के भीतर दौड़ते हुए रक्त से कहीं ज्यादा आवाज कर रहा है।''

यह नाटक साम्प्रदायिकता के अनेक सवालों को उठाते हुए मनुष्य की बेनकाब चेहरे का पर्दाफाश करती हुई असलियत को बड़े मार्मिकता और त्रासदी पूर्ण बयानो से हारे, सामने लाने का काम करती है। जाति, धर्म, तथा झूठे बन्धनों को बेनकाब करती हुई यह पूरी कहानी दो मृत व्यक्तियों के बीच फ्लैश बैक पर आपसी बातचीत की है। लेकिन नाटक का वास्तविक आरम्भ दो कब्र में पड़े मृत व्यक्तियों के बातचीत से होता है 'तू सोता क्यों नहीं?नींद नहीं आ रही क्या?' इस नींद आने में एक प्रकार की बेचैनी और छटपटाहट छिपी हुई है मानवीय और इन्सानियत को बचाने के लिए जो आज का इन्सान अपने लाभ के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार है लेकिन जब लोकतंत्र की बात करना होगा तो अपने घरों में कैद हो जाएगें ऐसा लगेगा कि वे लोकतांत्रिक देश में रह ही नहीं रहें हो। इस बात का अन्दाजा कब्र से आती हुई पहले मुर्दे की आवाज से लगाया जा सकता है– 'मुर्दे मौत की नहीं तो क्या जिन्दगी की बात करेंगे?' दूसरे– लेकिन वो जिन्दगी ही है, जिसमें हर रोज जीने की नई आस जागती है। हर रोज लगता है, हालात बदलेंगे। पहला– 'जिंदगी में ऐसा क्या जिसके लिए उसे याद किया जाय।' दूसरा– 'बहुत कुछ, मसलन रोटी का स्वाद, बच्चों की किलकारी, मुहब्बत का जादू। इन्हीं तीनों पर साम्प्रदायिकता पूरे विभाजन और नफरत का जहर पूरे कायनात को बदल कर रख देता है। सूकून की तलाश शायद मरने पर मिल जाए, जिन्दा रहने पर तो नहीं मिली।'

यह नाटक भी यह दिखाने की कोशिश कर रहा है कि साम्प्रदायिक दंगा करवाने वालों की कोई जाति और सूरत नहीं होती, न वहाँ कोई हिंदू होता है और ना ही मुसलमान 'कातिल तो सिर्फ कातिल होता है' जाति और धर्म के नाम पर सामान्य व्यक्ति को ठगा जाता है। हद तो तब होती है जब जाति और मजहब के नाम पर प्यार करने से रोका जाता प्रेम की कोई जाति नहीं होती, प्रेम सिर्फ प्रेम है। यह नाटक इस पर भी प्रश्न करता दिखाई देता है भारतीय समाज ने

ब्राह्मण, नाई, धोबी, शिया, सुन्नी आदि ऊँच–नीच के नाम पर प्रेम करने वालों रोका गया है। और जब वे मानते तो उन्हें मार दिया जाता है। साम्प्रदायिक दंगे जब तक जिन्दा है तब तक पूंजीवादी सत्ता के सामने बहुत बड़ा प्रश्न ये कब्रें खड़ी करती रहेगीं। 'इतना भी नहीं जानता कि भूख से सिर्फ गरीब मरते हैं?' इस सच्चाई को कहीं भी दफन करने पर भी नहीं छुपाया जा सकता। भूख की आग से गरीब किसान और मजबूर और उसके बच्चे मरते हैं और कोई दूसरा नहीं। कोरोना का काल खण्ड इसका सबसे बड़ा प्रमाण हो सकता है। गरीब व्यक्ति रोटी और रोजगार के लिए दर–बदर भटकते रहते हैं। अपनी भूख को अपने अन्दर ही दफन कर लेता और किसी से कहता नहीं, कहें किससे कोई तो नहीं है जो उसकी भूख को सूने पहला 'कोई हमारी बात सुन तो नहीं रहा?दूसरे–छोड़! जिन्दा जी किसी ने नहीं सुनी तो अब क्या खाक सुनेंगे?हाँ, जिन शोहदों ने मुझे मारा उन्होंने सड़क जाम किया दुकाने जलाई।.........मारे गए राहगीर और तमाशबीन पुलिस ने आनन–फानन में सारी लाशें ठिकाने लगा दी।'

इस नाटक की थीम को असगर वजाहत की कहानी 'शाह आलम कैम्प की रूहें' से जोड़ कर देखा जा सकता है।

इस नाटक की खास बात यह थी कि स्टेज और दर्शक के बीच कोई फर्क नहीं था। दर्शक को यह नहीं महसूस हुआ कि नाटक स्टेज पर हो रहा है। दरअसल नाटक स्टेज पर था ही नहीं नाटक को बहुत ही सीमित स्पेस में खेला गया और उसी अनुपात में दर्शक भी बैठाए गए। नाटक की रंगसज्जा बहुत ही काबिले तारीफ थी, रंगकर्मियों के द्वारा ही बनाया गया था। नाटक के समाप्त होने पर दर्शक से सम्वाद स्थापित करने की कोशिश की गई है, ताकि दर्शक के मन की जिज्ञासा का समाधान किया जा सके। और दर्शक से प्रश्न भी लिए गए, यहाँ प्रश्न लेने का मतलब यह है कि नाटक पर गम्भीर रूप से पहले चिन्तन किया गया है। नाटक देखने वाले दर्शकों की संख्या 15–20 थी। दर्शकों की संख्या कम–कम रखीं गई थीं। प्रश्न पूछने पर पता चला की यह किसलिए, तो बताया गया कि 'हम ज्यादा से ज्यादा नाटक को मंचित कर सकें और नाटक की कथा को और ज्यादा सफाई के साथ ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचा सकें। यह नाटक 40–45 मिनट का था पात्रों की संख्या सात है जिसमें छः पुरुष और एक महिला। लाइट एवं साउंड कोरस की ध्वनि बहुत संजीली थी। पूरे नाटक में संगीत का प्रयोग अपने से किया गया था, बाहरी धुन का प्रयोग नहीं किया गया। डिजाइन सब कुछ अपने से ही किया गया कैदखाने, स्टोररूम की तरह टूटे–फूटे, अस्त–पंजर, जहाँ कबाड़ रखा जाता है, कुछ मूर्दों का पुतला अपने से बनाए गए थे। बिना माइक के आवाज बहुत हल्की थी। तीन तरफ परदे का प्रयोग किया गया जिसमें परदा बांस–बल्लियों के सहारे कपड़े और बोरी को मिट्टी से पूता (लेप) लगाया गया था। और नाटक की सबसे बड़ी बात यह थी कि जनवरी माह की ठण्ड में मिट्टी पर अभिनेताओं ने फटे चिथड़ों हुए कपड़ों से अभिनय किया।

यह सही बात है थिएटरों की अपनी सीमा होती है लेकिन ऐसे नाटक को खुले परदे पर खेला जाना चाहिए ताकि जन–सामान्य तक कलाकारों का अभिनय और कथा का कथ्य आम लोगों तक पहुँच सके और व्यक्ति अपने इतिहास को दोहराने से पहले एक बार जरूर सोचे।

इन्सान अपने स्वार्थ के लिए मानवीय मूल्यों को कुचल देता है और गिरी हरकतों से बाज नहीं आता इस नाटक को मनोवैज्ञानिक धरातल पर रख कर देखा जा सकता है। कहीं–कहीं हम किसी वस्तु को उतनी बारीकी से नहीं देख पाते जितना की सुषुप्ता अवस्था में देख पाते हैं। इसी तरह इस नाटक में भी देखा गया है कि जिस बात के मर्म को एक इन्सान जिन्दा रहते हुए नहीं कह पाया वह मर कर कब्र के भीतर से कह रहा है और बड़े सफाई के साथ। यह नाटक यह भी दिखाता है इस दुनिया में इन्सानियत और मानवीयता से बढ़कर कोई भी धर्म नहीं हैं। हिंदू, मुसलमान, पारसी, सिन्धी सब कबीर के कुएँ समान है। जिसमें सभी लोग एक समान पानी भरने का काम करते हैं। आज के व्यक्ति को इन्सानी किताब पढ़ने की जरूरत है जो कार्य रंगमंच के आईने से परोसने का काम किया गया है।'

कविता

घिस रहा है धान का कटोरा

लक्ष्मीकांत मुकुल
ग्राम– मैरा, सैसड़, भाया– धनसोई
बक्सर (बिहार) मो.– 9162393009

देख–देख हुलस रहा है किसान का सुगना
इतिहास की लंबी परंपरा का वाहक
सनातन काल से करते हुए खेती
दादा लकड़दादा के जमाने से ही नहीं
बल्कि, उसके पूर्व से जब धरती पर
पहली बार हुए थे धान परती में
सुनता आया है वह दादी– नानी से कहानियाँ
जब धान के कंसों में सीधे उपजते थे चावल
उस जमाने में जब धरती पर उगे अनाज को
सोना से भी ज्यादा दिया जाता था महत्त्व
जब हर दुधारू पशु बिना नागा
भर देते थे दूध की बाल्टियाँ
नदियों की धार में बहाता था पीने वाला पानी
वृक्ष लताओं में सालो भर लदे रहते फूल–फल
चरती हुई पेड़ बकरियाँ भी बरा देती थीं अन्नधारी पौधे
बदला जमाना बदलती गए लोग बाग
स्वभाव, चरित्र, चाल–ढाल
वे खेतों में लटक रहे चावल के दाने को
कच्चे चबा जाते जब या, दूसरों के खेतों के
चावल झाड़ू देते लग्गी से
मिट्टी दरारों में फंसे चावलों का सर्वनाश हो जाता
लोग भूखे मरने लगते
आखिरकार कुदरत ने खोज लिया
अन्न को बचाने का उपाय
चावल सुरक्षित करने का नायाब तरीका
चावल के ऊपर लगा दी गई खोल
नोकदार खोइला बच गया धान, धान का कटोरा,
कटोरी में एकत्र सुनहले धान
उत्तेजित हवा में झूलते हुए
झूलाते हुए किसानों के तन–मन हरसाते हुए प्राण

दोहा

डाल्फिन गंगा-प्राण

डॉ. इन्दुभूषण मिश्र 'देवन्दु'
संपादक 'अंगगुंजन' (ई पत्रिका)
बाराहाट कहलगाँव, भागलपुर
मो.– 9931094215

माँ गंगा की गोद में, हैं बहुतेरे जीव।
पर उनमें हर एक का, अपना अलग नसीब।। 1।।

उनमें कोइ बन गया, गंगावाहन तात।
और जगत् में हो गया, संपूजित दिन–रात।। 2।।

जिसे ग्राह, घड़ियाल भी, कहते सारे लोग।
माँ गंगा की पा कृपा, बना पूज्य संयोग।। 3।।

पर ऐसे भी जीव कुछ, जो भोजन के काम,
आते हैं जनवृन्द के सबदिन सुबहोशाम।। 4।।

इनमें होतीं मछलियाँ, विविध भाँति की जान।
जो जल की नित शुद्धता, का रखती हैं ध्यान।। 5।।

पर ऐसे भी जीव कुछ, जो गंगा में वास।
करते है जिनसे हमें, मिलता नव उल्लास।। 6।।

वे गंगा की शान हैं, शोभा हैं हर काल।
औषधीय गुण युक्त भी, बिल्कुल बात कामल।। 7।।

उनमें 'डाल्फिन' नाम का, है जलीय एक जीव।
जिसे 'सोंस' भी, आमजन कहते, गजब नसीब।। 8।।

उनको होते हैं नहीं, नेत्र सुनें मतिमन।
किन्तु गजब उनको मिली घ्राणशक्ति पहचान।। 9।।

कर प्रतिध्वनि संधारणा, वह जिसके बल तात।
अपनी भोजन व्यवस्था, कर लेता दिन–रात।। 10।।

जन्तु जगत् विज्ञान में, है 'डाल्फिन' का नाम।
'प्लैटनिस्ट गैंगेरिका' जो अतिशय अभिराम।। 11।।

'प्लैटनिस्ट' तो जाति है, वर्ग 'ममैलिया' तात
'गैंगेरिका' प्रजाति है, बिल्कुल सच्ची बात।। 12।।

यह मानव–सा ही अहा, है सम्वेदनशील।
मिलनसार व्यवहार में, अतिशय उद्यमशील।। 13।।

ये होते हैं जा रहे, अक्षम हे श्रीमान।
अतः बचाने हम इन्हें, यत्न करें गतिमान।। 14।।

गंगा कचरे–गाद से, भरी जा रही रोज।
उसका अमरित जल हुआ जाता विष क्यों खोज।। 15।।

इससे भी नित 'डाल्फिन', नष्ट हो रहे जान।
बचा, बचा प्यारे इन्हें, जो गंगा का प्राण।। 16।।

हो शिकार इनका रहा, अब तक है निर्बाध
फिर गंगा कैसे रहे, स्वच्छ और आबाद।। 17।।

सुनते इससे दर्द का, बनता है एक तेल।
जिसके आगे विश्व की औषधियाँ है फेल।। 18।।

कर मालिश जिस तेल की जन पाते झट त्राण।
इसी हेतु इनका सुनो, हर लेते हैं प्राण।। 19।।

मिछली को भी फाँसने में यह तेल प्रयोग।
चारावत् करते अरे, नित मछुआरे लोग।। 20।।

इस कारण इनका सखे, नित शिकार निर्बाध।
करते देखो जा रहे अपना मतलब साध।। 21।।

अब गंगा में 'डाल्फिन' बिल्कुल अत्यल्प
देखा तब सरकार ने ले रक्षा संकल्प।। 22।।

घोषित इसको कर दिया 'भारत का जलजीव'
तब जागा इसका सखे, सोया हुआ नसीब।। 23।।

मरने से बच जाँय ये, 'डाल्फिन' जीव विशेष।
और स्वच्छ गंगा रहे, देती शुभ सन्देश।। 24।।

यह प्राकृतिक रूप से, है गंगा को लभ्य।
रखने को नित स्वच्छ औ, दिखने को नित भव्य।। 25।।

किन्तु आज गंगा हुई है कूड़ों की खान।
जिससे मिटती जा रही, इसकी छवि पहचान।। 26।।

इस हित दोषी हम सभी, हैं जितने इन्सान।
अब भी चेते तो मिले, हम मानव को त्राण।। 27।।

इस 'गंगा की गाय' का, हर बिध करें बचाव।
जिससे आसामी 'शिहू', यह ले अति फैलाव ।। 28।।

दण्डनीय अपराध है, 'डाल्फिन' जीव शिकार।
इस पर बिल्कुल शख्त है, भारत की सरकार।। 29।।

अतः न लुक–छिप कर करो 'डाल्फिन' जीव शिकार।
नहीं तो भारी दण्ड सुन, भोंगोगे इस बार ।। 30।।

गोताखोरी की कला अद्भुत भव्य कमाल।
'डाल्फिन' में है बन्धुवर! जिसका बड़ा धमाल।। 31।।

बड़ा मनोहर दृश्य यह, करता है उत्पन्न।
कभी प्रकट जल बीच से, होता कभी प्रच्छन्न।। 32।।

किन्तु आज विज्ञान से, सम्मत है जो बात।
इस क्रम में उसको सुनें, बतलाता हूँ तात।। 33।।

'डाल्फिन' मछली है नहीं, जो जल में ले श्वाँस।
इसे 'गलफड़ा' सम नहीं, श्वास ग्रंथि है खाश।। 34।।

अतः हवा में ही सदा, वह ले सकता श्वाँस।
जल में यह ना श्वाँस ले सकता कर विश्वास।। 35।।

जिस कारण जल में श्वसन, ना करता यह जान।
श्वसन हेतु बाहर चला आता झट श्रीमान्।। 36।।

और साँस ले फिर तुरत जल में तात प्रविष्ट।
कर जाता है इसलिये, यह है बात विशिष्ट।। 37।।

इसे समझते हम सभी उसका 'गोता' खेल।
पाते है आनन्द हम कर उससे सम्मेल।। 38।।

गंगा जल विष ना बने, करें शीघ्र हम यत्न।
अमरित है अमरित रहे, जागो भारत रत्न।। 39।।

चलो बचायें हम सभी, 'डाल्फिन' गंगाशान।
जिससे गंगा स्वच्छ रहे, दे अमरित जल दान।। 40।।

गंगा स्वच्छीकरण में, अब हम सबके साथ।
है भारत सरकार भी, देख बढ़ाये हाथ।। 41।।

आओ, आओ बन्धुगण गंगा 'डाल्फिन' युक्त।
करें और हम हों सदा, गंगा–संकट मुक्त।। 43।।

गज़लें

धर्मेन्द्र गुप्त
के. 3/10 ए माँ शीतला भवन, गाय घाट
वाराणसी मो.– 8935065229

खुद को बहलाती रहेगी
वेदना गाती रहेगी

सोच लो रचना तुम्हारी
बनके क्या थाती रहेगी

सुर मिले या मिल न पाये
जिन्दगी गाती रहेगी

तेल चुक जायेगा लेकिन
दीप में बाती रहेगी

जिन्दगी का क्या है, वो तो
रोज गम खाती रहेगी

अपने सागर से मिलन तक
ये नदी गाती रहेगी

खोल दो इन खिड़कियों को
रोशनी आती रहेगी

2
रोज मुझको जाँचता है
दर्द मुझको माँजता है

हर तरफ छाया है कोहरा
सूर्य अब तक लापता है

आदमी बस आदमी है
कब हुआ वो देवता है

नींद ना टूटे किसी की
डरके कोई खाँसता है।

झुग्गियाँ कल तक यहाँ थी
आज चौड़ा रास्ता है

किस तरह का दोस्त हूँ मैं
मेरा दुश्मन जानता है

3
टूटकर बिखरा बहुत मैं
और फिर सँवरा बहुत मैं

वक्त ने खोदा मुझे यूँ
हो गया गहरा बहुत मैं

आप गूँगे हो गये हैं
या हुआ बहरा बहुत मैं

रंग सा निखरा बहुत ही
गंध सा बिखरा बहुत मैं

तेजरौ होने दो मुझको
मुद्दतों ठहरा बहुत मैं

4.
तृप्ति का आभास फिर–फिर
जागती है प्यास फिर–फिर

टूटता विश्वास फिर–फिर
जागती है आस फिर–फिर

राजसिंहासन भरत को
राम को वनवास फिर–फिर

रोज ही घसियारा काटे
उग ही आती आस फिर–फिर

क्यों है ऐसा, हर सभा में
वो ही रहते खास फिर–फिर

चाहिए थोड़ी सी धरती
थोड़ा सा आकाश फिर–फिर

कविताएँ

हिम्मत न हार

गीता गुप्ता 'मन'
लखनऊ] उत्तर प्रदेश
मो.– 9453993776

जीवन समर में है खड़ा
बस लक्ष्य को ले विचार तू
है युद्ध का अंतिम पहर
मत सोच, कर दे प्रहार तू

है लक्ष्य कोई अभेद्य न,
हिम्मत नहीं है हारना
इस भय पराजय से हमें
मन को है अपने उबारना

नित हृदय में उत्साह भर कर
पीड़ा के भूलो सिलसिले
हो अरि दलों में खलबली,
रण में कोई भी रिपु मिले

निज लक्ष्य को तू ठान ले
उठ आज शर संधान कर
है शक्ति इतनी सोच में हो,
धरती को आसमान कर

दृष्टि लक्ष्य से हट न जाये
विश्वास स्वयं से नहीं घटे
बन सकेगा तु भी पार्थ अगर
संकल्पित धारा नहीं बटे

सर्वोत्तम है ये अभिकल्पना
मनुज की स्वर्णिम सुगढ़ कल्पना
वीर, धीर, रणविजय बनोगे
लिखकर शौर्य की नवल व्यंजना

2.
क्षुधा पेट की बढ़ रही,
तन मन है बेहाल
इन जूठी प्लेटों में ढूँढ़े
भोजन के निवाल

जीवन में दुर्भिक्ष है छाया
भूख से प्राण हुए व्याकुल
हो गई जिन्दगी श्वानों सी,
जूठन खाने को है आकुल

एक और ये वर्ग धनी जो
अन्न व्यर्थ में फेंक रहा
हैगरीब मोहताज अन्न का
जो उदर ज्वाल को सेंक रहा

भण्डारों में सड़ रहा अन्न जो
किया गया है नित संचित
उस लाभ से कोसों दूर अभी
आश्रित सारे जन है वंचित

मानवता कहाँ खो गयी है
ये स्वार्थ हुआ इतना हावी
न हृदय पसीजे देख इन्हें
कैसा होगा जीवन भावी

संकल्प करो हम सब मिलकर
भूखों पर कुछ उपकार करें
जो स्वप्न नए भारत का है
आओ मिलकर साकार करें

jkVh
दिन भर कठिन परिश्रम करते
तब जाके मिल पाती रोटी
भूख प्रबल जब हो जाती
जीवन रक्षक बन जाती रोटी
उनसे पूछो कीमत क्या है
इसके चन्द निवालों की
भूखा कोई सो जाता जब
सपने में है आता रोटी

कीमत रोटी की वो जाने
जो भूख प्यास से रोते हैं
मिट्टी की खा लेते रोटी
और पानी पीकर सोते हैं
अनवरत परिश्रम जो करते
हक उनको है दिलाती रोटी
अन्नदेव सम इस जग में है
रीत यही है सिखाती रोटी।

याद मुझे आती है अब भी
माँ के हाथ बनी रोटी
खुशबू थी जिसमें मिट्टी की
था अनाज का सोंधापन
मनुहार करें, फिर प्रेम कौर
गोदी में बिठा के खिलाती थी
सर्दी का मौसम आंच संग
घी गुड़ से महकता था आँगन

चन्द्रकांत राय
पूर्णिया (बिहार)
मो. 7992374408

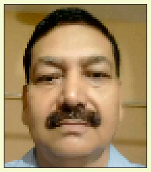

परम्परा के बोझ तले

महान देश की
न मिटने वाली
महान परम्परा के बोझ तले
पिसते रहता हूँ

निकलना चाहता हूँ
पर हर मोड़ पर
परम्परागत भीड़
हरबे–हथियार से लैस
वापस खदेड़ते रहते हैं

मुझे जाना कहीं और होता है और
भेज मुझे कहीं और दिया जाता है
इसी धक्का–मुक्कि में
एक दिन
मैं मंदिर की चौखट पर जा गिरा
अब परम्परा यह थी कि

जो मंदिर जाते हैं
उन्हें मस्जिद, गुरुद्वारे,
गिरजाघर भी जाना ही पड़ता है
दरअसल यहाँ जो जैसा दिखता है
वो वहाँ वैसा होता नहीं है

कभी–कभी तो मुझे
विरोधियों पर भी तरस आता है
उनका विरोध ऐसे होता है
जैसे कहीं किसी एकांत कोने में
नपुंसक कोकशास्त्र पढ़ रहे हों

एक बुद्धिजीवी ने
बिना मांगे
हल सुझाया
यदि इस अजूबे समय में जिंदा रहना है तो
समय को चुपचाप खेपते रहो
तब भी यदि परेशानी न हटे तो
तुम भी कोकशास्त्र पढ़ना शुरू कर दो
यह भी परम्परागत है

लगता है कवि फिर पिटेगा

पंक्तिबद्ध भीड़
चेहरे नहीं
केवल फैले हाथ

कवि ने तलाशी भूमिका
और क्रोध से देखा आकाश को
आकाश ने चुना रोशनी को
रोशनी ने चुना अंधेरे को
अंधेरे ने झांका
टूटी झोपड़ी में गुमसुम पड़ी
खाली रसोई और
उपवास से बेदम बुझे चुल्हे को
चुल्हे ने कहा भूख हो
भूख ने चुना गरीब को
गरीब से चुना सरकार को
और उसी फल से
और उसी पल से
गरीबी और खूब
दोनों सरकारी हो गये

उसी दिन उसी समय जबकि
तुफान आने ही वाला था तभी
सादे कागज पर
कलम ने मोटे अक्षरों में लिखा
लगता है कवि फिर पिटेगा।

कविता

शब्द

Hkkjr ;k;koj
यशवंतनगर, हजारीबाग (झारखंड)
मो.– 6204130608

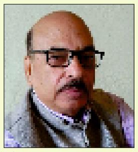

कितने ही शब्द थे
जो अबतक अनभिव्यक्त थे
एक दिन अचानक
एक शब्द मेरे पास आया
और उसने कहा
तुम मुझे कर सकते हो अभिव्यक्त
तो मेरा पीछा करो
और द्रुत गति से चल पड़ा
मैं उसे अभिव्यक्त करने की
इच्छा से भर उठा
और उसके पीछे–पीछे चल पड़ा
उसका पीछा करता
एक जंगल में पहुँचा
और देखा
एक पेड़ पर वह
एक पीला फूल बन खिला हुआ
खिलखिला कर हँस रहा है।
फिर
एक दिन
एक विचित्र शब्द मरे पास आया और उसने चुनौती दी
तुम मुझे कर सकते हो अभिव्यक्त?
और द्रुत गति से चल पड़ा
मैं उसके पीछे–पीछे एक नदी के पास पहुँचा
वह एक रंगीन मछली होकर जलविहार कर रहा था
और फिर
घाव से भरा चेहरा लिए एक दिन एक शब्द आया
और लहूलुहान तड़फड़ाते एक सैनिक के पास ले गया
उसे देख मेरा हृदय बेचैन हो गया
और फिर

एक शब्द भूख से बिलबिलाते आदमी के पास ले गया
और मैं अपनी ममता उलीचकर उसके पास बैठा रहा

बहुत सारे शब्द थे
उनके बहुत सारे अर्थ थ
हर शब्द मुझे चलना सिखाते थे
सौन्दर्य की खुशबू भरते थे
लाचारों के साथ जीना सिखाते थे`
हँसना और रोना सिखाते थे
मुझे गतिमान रखते थे
कुछ खोज कर लाना सिखाते थे
मुझे कई–कई तरह से जीना सिखाते थे

शब्दों के पंख होते थे
उनपर बैठकर उड़ना मुश्किल था
फिर भी उड़ता था

बहुत सारे शब्द थे
जो अब तक अनभिव्यक्त थे
रहस्यमय थी उनकी दुनिया
कुछ खामोश और कुछ मुखर
कुछ कोमल और कुछ प्रखर

उनके रहस्य को जानना
उनका अंतरंग होना
मुश्किल था
जो भी शब्द थे
कोई न व्यर्थ थे।

आखिर हमें छोड़ कर चले ही गए :–
भारत यायावर!

इनका जन्म 29 नवम्बर 1954 ई0 को हजारीबाग के पश्चिम छोर से सटा "कदमा" नामक गाँव में हुआ था। ये विनोबाभावे विश्वविद्यालय के हजारीबाग कॉलेज से हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद से 2019 के नवम्बर में सेवा निवृत्त हुए। शुरू से गरीबी में पले–बढ़े इन्होंने विलक्षण प्रतिभा पायी थी। चार भाई और दो बहनों के बीच ये बपनी बड़ी बहन के सबसे करीब थे। इन्हें अपने आस–पास के लोगों से बड़ा लगाव था। ये बहुत ही सम्वेदनशील, विनम्र, सहज व सरल स्वभाव के रहे हैं। ये मूलतः ग्रामीण संवेदना के सशक्त कवि रहे हैं। छात्र जीवन से ही ये कविता लिखते रहे थे। हजारीबाग में ही इनके साहित्य कर्म का उदय हुआ। ग्रामीण जीवन में पल्लवित–पुष्पित इनका व्यक्तित्व सदा ही पेड़–पौधों की तरह जुड़ा रहा। यही कारण है कि इनकी कविताओं में शहर एवं महानगर कम गाँव, टोले, महल्ले के लोग, उनकी पीड़ा, चिंता एवं अभाव की जिंदगी अधिक होती है। इनके लेखन की यात्रा का विकास भी अभावों तथा आर्थिक संकटों से जूझते रहा है। यही कारण है कि जीवन के कठोर अनुभवों से पैदा हुई सच्चाई भी इनकी कविताओं में दर्ज है। इनका आत्मविश्वास इतना सशक्त रहा कि इन्हें कोई भी विचार धारा की आँधी नर तो उड़ा सकी और न दिग्भर्मित ही कर सकी। ये नगार्जुन की तरह खूब घुमे और आदमी के सुख–दुःख को समझे। इन्होंने एक रोटी से पूरी व्यवस्था को जोड़कर उसे अपनी रचनाओं में उकेरा है। ये लोक जीवन के कवि रहे हैं। इनकी कविताओं का संसार जीवन को आकर्षित करता है। इनमें सदा प्रेम रहा, करूणा रही और सत्य कहने का साहस रहा। लोगों के साथ आत्मीय सम्बन्ध को जीने की कला, परिवार को जोड़ने की शक्ति, प्रेम तथा अनुराग इनमें भरा– पूरा था।

इनके रचनात्मक पक्ष का दूसरा हिस्सा सम्पादन एवं आलोचना है। हिन्दी के साहित्य पटल पर रेणु के साहित्य में जिस प्रकार इन्होंने पुस्तक एवं रचनावली से किया है, वह ऐतिहासिक कर्म है। रेणु के रचना–संसार में गाँव का सरस, मधुर, तिक्त एवं संघर्षमय जीवन है, यही लोकचेतना यायावर के लेखन में भी है। इन्होंने रेणु पर अपनी लम्बी खोज–यात्रा के उपरांत लिखा है– "रेणु का है अंदाज़े–बयाँ"। रेणु के जीवन और साहित्य के अनेक नए और अनछुए पहलुओं की तलाश इन्होंने की है। इनका मानना है कि आलोचना आज के संदर्भ में प्रासंगिक है। यह साहित्य की अनगिनत, अनसुलझी गुत्थियों को सुलझाती है और साहित्य–पथ में रोशनी दिखाती है। इनका शोधात्मक निबंध "अंतिम गांधी" है जिसमें इन्होंने स्वाधीन भारत में गांधी की परम्परा को आगे तक ले जाने वाले और गांधी की तरह ही अपने जीवन को एक आन्दोलन बना लेनेवाले जयप्रकाश नारायण को समझा।

इनके द्वारा लिखित रचनाएँ कविता संग्रह में "झेलते हुए", मैं हूँ", "बेचैनी", "हाल बेहाल", "कविता फिर भी मुस्कुराएगी", रचना है निरन्तर", आलोचना–"विरासत", "नामवरसिंह का आलोचनाकर्म", "फणीश्वरनाथ रेणुः कथा का नया स्वर", "रेणु का है अन्दाजे बयाँ", "महावीर प्रसाद द्विवेदीः एक पुनर्पाठ", "दस्तावेज", "रेणु की तलाश आदि हैं।

समस्त यादों को छोड़ ये दिनांक–28.10.2021 को इस नश्वर शरीर का त्याग कर ब्रह्मलीन हो गए। काश अभी और रहते, तो साहित्य–निधि को और समृद्ध कर जाते।

सुसंभाव्य परिवार उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हैं।

सुसंभाव्य प्रकाशन

कार्यालय

भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303